दिसम्बर 2024

दादावाणी

Retail Price ₹.20

356⁰
निरालंब स्थिति
(ज्ञानी पुरुष
ए.एम.पटेल)

345⁰
आत्मा की
स्पष्ट वेदन दशा

325⁰
स्थूल दखल
बिना की
स्थिति

300⁰
अक्रम मार्ग में
आत्मज्ञान

360⁰
केवलज्ञान दशा
(दादा भगवान / तीर्थंकर भगवान /
केवली / सिद्ध भगवान)

हम आपको आत्मा का ज्ञान देते हैं, आप सभी को आत्मानुभव है। हर एक को अपने-अपने परिमाण में। जैसे-जैसे आत्मा का अनुभव होता जाएगा न, वैसे-वैसे काम होता जाएगा। आत्मानुभव पच्चीस-तीस प्रतिशत होने के बाद उसमें बुद्धि (की स्थूल दखलंदाजी) नाम मात्र भी नहीं रहती। बुद्धि पच्चीस प्रतिशत चली जाती है, तब (आत्मा का) अनुभव पच्चीस प्रतिशत होता है।

अडालज : दिवाली और नूतन वर्ष का महोत्सव : ता. 31 अक्तूबर और 2 नवम्बर 2024

त्रिमंदिर में दर्शन
अन्नकूट
पूजन-आरती
दृष्टि दर्शन
प्रकाशमय त्रिमंदिर

परम पूज्य दादा भगवान का 117वाँ जन्मजयंती महोत्सव : वडोदरा : ता. 10 से 17 नवम्बर 2024

पूज्यश्री

गुजरात के मुख्यमंत्री श्री भूपेन्द्रभाई पटेल

दीप प्रागट्य

सांस्कृतिक कार्यक्रम/नाटक

परम पूज्य दादा भगवान की स्मृति में स्पेशियल टपाल टिकिट का अनावरण

सत्संग

वर्ष : 20 अंक : 2
अखंड क्रमांक : 230
दिसम्बर 2024
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2024
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Multiprint
Opp. H B Kapadiya New High School, At-Chhatral, Tal: Kalol, Dist. Gandhinagar - 382729

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज**,
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 1000 रुपये
वार्षिक
भारत : 200 रुपये
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

325 डिग्री तक पहुँचने का पुरुषार्थ

संपादकीय

आत्मविज्ञानी परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) की अनेक मौलिक खोज़ों में से एक अद्‌भुत खोज, जिसमें वे जगत् को स्वतंत्रता का सिद्धांत देते हुए कहते हैं कि, 'कोई जीव किसी जीव में किंचित्‌मात्र दखल नहीं कर सकता, ऐसा स्वतंत्र जगत् है।' तो फिर इस जगत् में खुद को दुःख क्यों भुगतना पड़ता है? भटकना क्यों पड़ता है? किसी के राग या द्वेष से खुद बंधन में आ सकता है या फिर खुद के ही राग-द्वेष, खुद की ही दखलंदाज़ी से खुद बंधा है?

बुद्धि की दखल यानी क्या? प्रकृति पसंदीदा संयोगों में राग करती है, नापसंदीदा संयोगों में द्वेष करती है, राग-द्वेष, वे सब दखल हैं। अपमान करने वाले के प्रति अभाव और मान देने वाले के प्रति भाव होता रहता है, वह दखल है। कर्तापन, वह भी दखल है, कि तुझे नहीं आएगा, मैं ही करूँगा, वह सब दखल है। किसी परिस्थिति से हमें अड़चन हो, दुखदायी लगती है तो अभी हमारी कॉमनसेन्स खुली नहीं है। एडजस्टमेन्ट लेने की शक्ति भी कम पड़ती है, दूसरों के दोष दिखाएँ, खुद को भोगवटा में रखें, नेगेटिव करवाएँ, भेद डलवाएँ, उसका क्या कारण है? बुद्धि की दखल।

जिसे इस बुद्धि की दखल को पहचानना है, उसे जुदापन की जागृति रखकर, 'यह गलत है', ऐसा जानकर उसके प्रतिक्रमण करेगा तो दखल कम होता जाएगा। जैसे-जैसे पाँच आज्ञा का पालन करके जागृति रखकर भरा हुआ माल खाली होता जाएगा, वैसे-वैसे दखल रहित स्थिति हो जाएगी या दूसरे शब्दों में, जैसे-जैसे बुद्धि कम होती जाएगी वैसे-वैसे अबुध दशा आती जाएगी, अभेदता-प्रेम बढ़ता जाएगा। आखिर में कहाँ तक पहुँचना है? 'लघुतम भाव और अभेद दृष्टि' कि जो अक्रम विज्ञान का फाउन्डेशन है!

इस साल गुरुपूर्णिमा के निमित्त से पूज्यश्री ने महात्माओं को '325 डिग्री तक पहुँचने का पुरुषार्थ शुरु करने का' दादाश्री का ज्ञानसंदेश दिया है। दादाश्री कहते हैं कि जब यह ज्ञान प्रकट हुआ तब हमने 360 डिग्री को स्पर्श किया परंतु हमें ज्ञान संपूर्ण पचा नहीं, इसलिए 356 डिग्री पर आ गए। हम आपको वैसा ही ज्ञान देते हैं। 325 डिग्री तक आप पहुँच सकते हो, उतना पुरुषार्थ करने का ध्येय तय करने की ज़रूरत है।

325 डिग्री पर पहुँचने का मापदंड क्या है? 25-30 प्रतिशत भी बुद्धि कम हो जाए और जब किसी को आपके लिए और आपको किसी के लिए दखल न हो, खुद अपने लिए भी दखल बंद हो जाए तब समझना कि 325 डिग्री पर आप पहुँच गए। पाँच आज्ञा बुद्धि की दखल खत्म कर दें, ऐसी है। हम सभी जागृतिपूर्वक पाँच आज्ञा का पालन करके, 325 डिग्री तक की ज्ञान की श्रेणियाँ चढ़ने का पुरुषार्थ शुरू कर सकें, यही हृदयपूर्वक अभ्यर्थना।

जय सच्चिदानंद

325 डिग्री तक पहुँचने का पुरुषार्थ

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

(सूत्र-1)

राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ, ये सभी दु:ख देने वाली चीज़ें हैं। भीतर जो क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, वे दखल करते हैं। जो चीज़ सहज नहीं रहने दे, उसे दखल कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : मनुष्य खुद दु:खी रहता है, इसके बावजूद भी वह इस संसार में क्यों फँसता रहता है?

दादाश्री : वह नहीं फँसता है, वह दु:खी है, उसे खुद को छूटना है, यह अच्छा नहीं लगता लेकिन उसके हाथ में सत्ता नहीं है, प्रकृति के ताबे में है। वह प्रकृति से छूटे तभी छूट पाएगा, वर्ना प्रकृति उसे उलझाती ही रहेगी। प्रकृति बन चुकी है, खुद उसके ताबे में है। उसके बाद खेल अपने हाथ में नहीं रहा। अब तो जितना प्रकृति से छूटेंगे, उतना ही खेल अपने हाथ में आएगा। बाकी जब तक प्रकृति से नहीं छूटेंगे, तब तक प्रकृति हमें उलझाती ही रहेगी। पूरा जगत् प्रकृति से परवश होकर चलता रहता है।

जब तक प्रकृति के अधीन है, तब तक पुरुष (आत्मा) का कुछ नहीं चलता। जब पुरुष प्रकृति से छूटे, तब सबकुछ पुरुष का ही चलता है। 'मैं कौन हूँ' ऐसा जानो और वह अनुभव में आ जाए, तब छुटकारा होगा, नहीं तो छुटकारा नहीं होगा। वर्ना ये दु:ख आप पर आते ही रहेंगे। संसार के दु:ख निरंतर भोगते ही रहने पड़ेंगे। पलभर में शांति और पलभर में अशांति, पलभर में शांति और पलभर में अशांति, वह प्रकृति की वजह से है।

जैसे प्रकृति नचाए वैसे नाचता है। खुद के हिताहित का ध्यान नहीं रहता। प्रकृति जब गुस्सा करवाती है तब गुस्सा करके खड़ा रहता है। प्रकृति रुलाती है तब रोता भी है। उसे शरम भी नहीं आती। खुले आम रोता है। ऐसे रोता है कि टप-टप आँसू गिरते हैं।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति रुलाती है या कर्म रुलाते हैं, दादा?

दादाश्री : कर्म का अर्थ ही है, प्रकृति। वही मूल प्रकृति कहलाती है। यह प्रकृति ही सबकुछ चलाती है, करती है प्रकृति और खुद क्या कहता है कि मैंने किया, इसी को कहते हैं इगोइज़म।

चाय कौन माँगता है? प्रकृति माँगती है। यह जलेबी कौन माँगता है? भूख किसे लगती है? प्यास किसे लगती है? वह सब प्रकृति को। अपमान करने पर अपमान किसका होता है? प्रकृति का। यह आपको जो कुछ आ मिलता है, वह आपकी प्रकृति के हिसाब से ही मिलता है। प्रकृति के अनुसार ही हर चीज़ मिल जाती है। कितनी ही हितकारी चीज़ें होती हैं, यदि वे अपने आप सहज रूप से प्राप्त होती हो तो अच्छी बात है। यदि ऐसा हो सके तो होने देना और नहीं हो सके तो कुछ नहीं, एकदम सहज रहना। दखल नहीं करना। जो चीज़ सहज नहीं रहने दे, उसे दखल कहते हैं।

प्रकृति के अनुसार, अंदर की डिमान्ड के अनुसार, सबकुछ आपको आ मिले ऐसा है। काली

मिर्च वाले को काली मिर्च और इलायची वाले को इलायची मिल जाती है, बैंगन वाले को बैंगन और चाय पीता हो, उसे चाय मिल जाती है और यदि सूँठ वाली चाय प्रकृति में रही तो सूँठ वाली चाय भी उसे मिल जाती है। पर भीतर जो क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, वे दखल करते हैं। लोभ संग्रह करना सिखाता है। ऊपर से, उसके लिए कपट करते हैं और भयंकर दखल कर बैठते हैं। अरे, किसी भी प्रकार की दखल करने की ज़रूरत नहीं है। राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ, ये सभी दु:ख देने वाली चीज़ें हैं। इन्हीं को कषाय कहते हैं। कषाय अर्थात् अंदर आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) को दु:ख होता रहता है, बेचैनी होती रहती है।

(सूत्र-2)

राग-द्वेष तो दखल है। जैसा माल भरा हुआ है, वह निकलता रहेगा लेकिन राग-द्वेष न हों, वही (महात्माओं की) दिनचर्या है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने से पहले और अभी भी कई बार ऐसा होता है कि हमें खुद को कोई तकलीफ हुई हो और वैसी ही कोई तकलीफ किसी और को भी हो जाए तो अंदर से ऐसा लगा कि अच्छा हुआ जो ऐसा हुआ। वह क्या है?

दादाश्री : ऐसा जो होता है कि अच्छा हुआ तो वह द्वेष का परिणाम है और अगर ऐसा लगे कि बुरा हुआ तो राग का परिणाम है। वे जो राग-द्वेष के परिणाम के भाव अंदर भरे थे, वह माल आज निकल रहा है। भगवान के वहाँ कुछ भी अच्छा या बुरा है ही नहीं, सभी कुछ ज्ञेय ही है। वह सिर्फ जानने योग्य ही है।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसा हो तब क्या करना चाहिए? प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए?

दादाश्री : जब ऐसा हो तो उसे देखना है, यहाँ पर ऐसा हुआ और यहाँ पर ऐसा हुआ। इसमें हमें यही देखना है। और यदि कभी द्वेष परिणाम से सामने वाले व्यक्ति के साथ कुछ ज़्यादा ही अन्याय होने लगे तो वहाँ पर चंदूभाई से ऐसा कहना है कि, 'भाई, आप प्रतिक्रमण करो। आपने अतिक्रमण क्यों किया? अत: प्रतिक्रमण करो'। अगर ऐसा कुछ ज़्यादा हो जाए तो, वर्ना यदि सामने वाले के लिए दु:खदाई नहीं है तो कोई ज़रूरत नहीं है। वह तो सिर्फ अपनी समझ है। हमें अपनी तरह से धो देना है, ज्ञेय की तरह देखने से धुल जाएगा। अज्ञान दशा में तो इस तरह किसी का कुछ बिगड़ जाए तो ऐसा लगता है कि 'अच्छा हुआ' और उसके प्रति द्वेष रहता ही है। अभी बाद में पीछे से द्वेष नहीं रहता। लगता ज़रूर है कि खराब हुआ, अच्छा हुआ ऐसा लगता है। अत: यह जो सब निकल रहा है, वह भरा हुआ माल है।

जैसा माल भरा हुआ है, वह निकलता रहेगा लेकिन राग-द्वेष न हों, वही (महात्माओं की) दिनचर्या है। कोई थप्पड़ लगा जाए, कोई नुकसान कर जाए तो राग-द्वेष न हों, ऐसा होना चाहिए। राग-द्वेष तो दखल है। दखल वाला माल आपको खपाते रहना है, दखल नहीं रहे तब समझो हो चुका। दूसरा, जो है वही माल निकलता रहता है।

नया माल नहीं लाना है और पुराने माल को खपा देना है। आपको दुकान बंद कर देना है न? बंद करना है, उसे तो यह रास्ता दिखाया है कि भाई, इस तरह से माल खपा देना, पाँच आज्ञा में रहकर। वह लूटकर चला जाए पर आप लूटने मत जाना। आपको माल खपा देना है।

आप खुद चंदूभाई बन जाओ तो राग-द्वेष आपके कहलाएँगे वर्ना उसे राग-द्वेष कैसे कहेंगे? तो फिर पूछते हैं कि 'यह क्या हो रहा है?' तब कहतें हैं, यह जो हो रहा है, वह चंदूभाई को हो रहा है और आप शुद्धात्मा इसे जानते हो कि

यह क्या हो रहा है और आप ऐसा भी कहते हो कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह सब सही है।

दादाश्री : यानी कि आपका अभिप्राय अलग है इसलिए आप वीतराग हो। अत: हमने कहा है न कि पुरुषार्थ तो आपका ज़बरदस्त चल रहा है। पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ रह सकता है वर्ना यों तो ज़रा सी देर के लिए भी राग-द्वेष बंद नहीं होते। मन में खराब विचार आए, अच्छा विचार आए, दूसरा हुआ हो, तीसरा हुआ हो, सब तुरंत ही देखता है। किसी ने कैसी वाणी बोली? किसी ने कुछ बुरा कह दिया या अच्छा कह दिया हो तो भी राग-द्वेष नहीं होते। जहाँ राग-द्वेष नहीं होते, उसी को आत्मा कहते है और जहाँ राग-द्वेष होते हैं, वह कहलाता है संसार, देहाध्यास। संसार की नींव राग-द्वेष है और 'ज्ञान' की नींव वीतरागता की है!

वीतराग यानी अभी कोई गाली दें, तो उसका असर खुद नहीं स्वीकार करते और स्वीकार करते तो नहीं है पर मूँह भी नहीं बिगड़ता, अंदर भाव भी नहीं बिगड़ते, परिणति नहीं बिगड़ती। खुद के परिणाम भी न बिगड़े, वे वीतराग! उन्हें गाली दें, मारपीट करे, घर जल जाए, तब भी उनके कुछ भी परिणाम नहीं बिगड़ते और वीतराग ही रहते हैं। वीतराग कौन हो सकता है? जिन्हें फायदा-नुकसान नहीं होता, जिन्हें सुख-दु:ख नहीं होता, द्वंद्व नहीं होता, द्वंद्व से रहित हो चुके हो, वे वीतराग हैं।

'वीतराग' क्या कहते हैं? जगत् तो चलता ही रहेगा। उसमें तू किसी दखल में मत पड़ना। यदि तुझे मोक्ष में आना हो तो वीतरागता रख!

(सूत्र-3)

अपना ज्ञान क्या कहता है? वर्ल्ड में ऐसा कोई पैदा ही नहीं हुआ है कि जो आप में कुछ दखल कर सकता हो ! यह दखल क्यों आती है? आप में जो दखल करता है, वह आपके लिए निमित्त है, लेकिन उसमें मूल हिसाब आप ही का है।

प्रश्नकर्ता : कोई कुछ कह दे, उसमें हम समाधान कैसे करें? समभाव कैसे रखें?

दादाश्री : अपना ज्ञान क्या कहता है? कोई आप में कुछ कर सकें, ऐसा है ही नहीं। वर्ल्ड में ऐसा कोई पैदा ही नहीं हुआ है कि जो आप में कुछ दखल कर सकता हो! कोई किसी में दखल कर सकें, ऐसा है ही नहीं। तो फिर यह दखल क्यों आती है? आप में जो दखल करता है, वह आपके लिए निमित्त है, लेकिन उसमें मूल हिसाब आप ही का है। कोई उल्टा करे या सीधा करे, लेकिन उसमें हिसाब आपका ही है और वह निमित्त बन जाता है। वह हिसाब पूरा हुआ कि फिर कोई दखल नहीं करेगा।

इसलिए निमित्त के साथ झगड़ा करना व्यर्थ है। निमित्त को दोषित देखने से वापस फिर से गुनाह खड़ा होगा। इसलिए इसमें करना कुछ भी नहीं है। यह विज्ञान है, यह सब समझ लेने की ज़रूरत है। लेकिन यह तो दखलंदाज़ी करता है कि, 'अरे! ऐसा क्यों किया?' अरे! ऐसा कर।' अरे! ऐसा क्यों कर रहो हो?

प्रश्नकर्ता : यानी मौन हो जाएँ तो अच्छा?

दादाश्री : मौन ही हो जाना है। वाणी तो बोलना ही मत। इस काल की वाणी तो पागल ही है। बोलने के साथ ही पागलपन बाहर आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : फिर तो बोलना चाहिए न? बाहर पता चल जाए तो अच्छी बात है न?

दादाश्री : नहीं, यह गलत है। इसमें बोलने जैसा रहता ही नहीं है। 'यह ज्ञान' ही ऐसा प्रकाशमय है कि बोलने की ज़रूरत ही नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वातावरण ही ऐसा होता है तो कभी बोल देते हैं।

दादाश्री : बोल देते हैं, तब आपको कहना चाहिए कि, 'यह चंदूभाई का दिमाग़ थोड़ा गरम ही है।' आपको चंदूभाई के बारे में उल्टा बोलते रहना चाहिए। चंदूभाई के साथ प्यार रहा नहीं न आपको या बहुत प्यारे लगते हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तो फिर हक़ीक़त कह देनी चाहिए। 'चंदूभाई' 'आपसे' अलग हैं, इस तरह आपको बात करनी है।

प्रश्नकर्ता : 'चंदूभाई' का हथियार उठाना ही नहीं है, ऐसी बात है।

दादाश्री : हाँ, ये सही है। हथियार नहीं उठाना है। अनंत अवतार से हथियार उठाकर पराये का रक्षण किया है।

ज़रूरत से ज़्यादा बोल दिया, वह पागलपन लगता है न! कभी ऐसा पागलपन हो जाए, तो आपको कह देना है कि 'यह चंदूभाई बोले हैं न, उन्हें मैं पहचानता हूँ। थोड़े कठोर स्वभाव वाले हैं।' हमारे भतीजे को मैं कहता था कि, 'चाचा पहले से ऐसे ही थे, आज के नहीं है।' तब वह कहता है, 'आप ऐसा क्यों बोलते हैं?' 'आप' और 'चाचा', दोनों अलग हैं, ऐसा उसे समझ नहीं आता था न!

अब आपको तो पता चल जाता है न, कि उल्टा बोला? आप तो ज़्यादा जाग्रत हो।

प्रश्नकर्ता : हाँ, पता चल जाता है।

दादाश्री : और आप ऐसा दो-चार बार बोलोगे न, तो फिर सामने वाला भी अपने आप को 'टेढ़ा है' ऐसा खुद कहेगा। लेकिन यदि आप उसे ऐसा कहो कि 'आप गलत हो', तो वह आपको पकड़ लेगा। इसलिए दूसरों को गलत कहना छोड़ ही दो और किसी को भी गलत कहना ही नहीं चाहिए। यह तो आपकी मूर्खता है। किसी को गलत कहना, ब्लेइम (आरोप) करना, ऐसा बोलना, यह आपकी फूलिशनेस (मूर्खता) है।

(सूत्र-4)

खुद शुद्धात्मा हो जाए तो स्पंदन बंद हो जाएँगे और स्पंदन बंद हुए तो धीरे-धीरे प्रकृति सहजता में आ जाएगी। दोनों सहजता में आ जाएँ, उसी को वीतराग कहते हैं ।

संसार-सागर, वह परमाणुओं का सागर है। उसमें स्पंदन खड़े होते हैं, तब तरंगे उत्पन्न होती हैं और वे तरंगे फिर दूसरों से टकराती हैं, इससे फिर दूसरे में भी स्पंदन खड़े होते हैं और फिर तूफान शुरू होता है। यह सब परमाणुओं में से ही उपजता है। आत्मा उनमें तन्मयाकार हो जाए तो स्पंदन ज़ोरों में शुरू होते हैं।

इस दुनिया में भी सागर जैसा ही है। एक भी स्पंदन उठा तो सामने अनेकों प्रति स्पंदन उठते हैं। सारा संसार स्पंदन से ही उत्पन्न हुआ है। सभी तरह के सभी स्पंदन सच्चे हैं और तालबद्ध सुनाई देते हैं।

किसी बावड़ी में जाकर तू उसमें मुँह डालकर ज़ोर से चिल्लाए कि 'तू चोर है।' तो बावड़ी में से क्या जवाब आएगा? 'तू चोर हैं'। तू कहे कि 'तू राजा है' तो बावड़ी भी कहेगी, कि 'तू राजा है' और 'तू महाराजा है', ऐसा कहे तो बावड़ी 'तू महाराजा है' ऐसे जवाब देगी! वैसे ही यह जगत् बावड़ी जैसा है। तू जैसा कहेगा वैसे स्पंदन उठेंगे। 'एक्शन एन्ड रिक्शएन आर इक्वल एन्ड ऑपोज़िट' (क्रिया और प्रतिक्रिया समान और एक-दूसरे के विरुद्ध होती हैं।) ऐसा

नियम है। इसलिए आपको पसंद हों, वैसे स्पंदन डालना। सामने वाले को चोर कहा तो तुझे भी 'तू चोर है' ऐसा सुनना पड़ेगा और 'राजा है', ऐसा सामने वाले को कहेगा तो तुझे 'राजा है', ऐसा सुनने को मिलेगा। हमने तो तुझे परिणाम बताए, पर स्पंदन करना तेरे हाथ की बात है। इसलिए तुझे अनुकूल आए, वैसा स्पंदन डालना।

हम पत्थर नहीं डालें तो हम में स्पंदन नहीं उठते और सामने वाले में भी तरंगे नहीं उठतीं और हमें भी कोई असर नहीं पहुँचता। पर क्या हो सकता है? सभी स्पंदन करते ही हैं। कोई छोटा तो कोई बड़ा स्पंदन करता है। कोई कंकड़ डालता है तो कोई पत्थर डालता है। ऊपर से फिर स्पंदन के साथ अज्ञान है इसलिए बहुत ही फँसाव है। ज्ञान हो और फिर स्पंदन हों तो हर्ज नहीं। भगवान ने कहा है कि स्पंदन मत करना। पर लोग बिना स्पंदन किए रहते ही नहीं न! देह के स्पंदनों में हर्ज नहीं है पर वाणी और मन के स्पंदनों की मुश्किल है। इसलिए इन्हें तो बंद ही कर देना चाहिए, यदि सुख से रहना चाहो तो। जहाँ-जहाँ पत्थर फेंके हैं, वहाँ-वहाँ स्पंदन उत्पन्न होंगे ही।

जीभ से, वाणी से, (व्यवहार) बनाना-बिगाड़ना और बिगाड़ना-बनाना ये क्या है? वह अहंकार है पूर्वजन्म का। उस अहंकार से जीभ चाहे जैसा कह देती है और उसमें स्पंदनों का टकराव खड़ा होता है। आज तो जो भी दु:ख हैं, वे अधिकतर जीभ से, वाणी से, स्पंदनों से ही हैं!

देह से होने वाले स्पंदन, वाणी से होने वाले स्पंदन और मन से कल्पित एक भी परमाणु में यदि उपयोग रखा तो समझना, मारा जाएगा! फिर कितने ही जन्मों तक भटकना पड़ेगा! भगवान ने क्या कहा है कि एक समय के लिए भी खुद, खुद का नहीं हुआ है। स्पंदनों में ही सारा समय गुज़ारता है। वे भी तरंगे उछालते हैं और आप भी तरंगे उछालते हैं इसलिए डूबते भी नहीं और तैर भी नहीं पाते।

ये सब अपने खुद के ही परिणाम हैं। आप आज से किसी को स्पंदन फेंकने का, किंचित्मात्र किसी के लिए विचार करना बंद कर दो। विचार आए तो प्रतिक्रमण करके धो डालना, ताकि पूरा दिन किसी के भी प्रति स्पंदन बिना का बीते! इस प्रकार से दिन बीते तो बहुत हो गया, वही पुरुषार्थ है। यदि खुद शुद्धात्मा हो जाए तो स्पंदन बंद हो जाएँगे और स्पंदन बंद हुए तो धीरे-धीरे प्रकृति सहजता में आ जाएगी। दोनों सहजता में आ जाएँ, उसी को वीतराग कहते हैं।

(सूत्र-5)

आपकी दख़लंदाज़ी बंद हो जाए तो आपमें दख़लंदाज़ी करने वाला दुनिया में कोई नहीं होगा। आपकी दख़लंदाज़ी के ही परिणाम हैं ये सब! जिस घड़ी आपकी दख़लंदाज़ी बंद हो जाएगी, तब आपका कोई परिणाम आपके पास नहीं आएगा।

इस जगत् में कोई ऐसा जन्मा ही नहीं कि जो आपका नाम दे! और नाम देने वाला होगा, उसके लिए आप लाखों-लाखों उपाय करोगे तब भी आपसे कुछ हो नहीं पाएगा। इसलिए कौन सी तरफ जाएँ अब? लाख उपाय करने में पड़े रहें? नहीं, कुछ होगा नहीं। इसलिए सभी काम छोड़कर आत्मा की तरफ जाओ। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा निर्णय हो जाना, उसी को आत्मानुभव कहते हैं!

प्रश्नकर्ता : यानी मूल बात ही आकर खड़ी हो गई।

दादाश्री : हाँ, जो हो रहा है उसे 'देखते' रहो कि क्या हो रहा है? वह 'पर' और 'पराधीन' चीज़ है। और जो हो रहा है, वही न्याय हो रहा

है और वही 'व्यवस्थित' है। अच्छे लोगों को फाँसी पर चढ़ाते हैं, वह भी न्याय ही है और दुष्ट व्यक्ति छूट गया, वह भी न्याय है। आपको वह देखना नहीं आता, कि अच्छा कौन और दुष्ट कौन? आपको केस की जाँच करना नहीं आता है। आप अपनी भाषा में इसे केस मानते हो!

प्रश्नकर्ता : तो फिर 'सही है, गलत है', ऐसा अर्थ करना ही नहीं चाहिए, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : सही-गलत, वह सब बगैर समझ की बातें हैं। खुद की समझ से खुद न्यायाधीश बन बैठा है।

किंचित्मात्र आपको कोई कुछ कर सके ऐसा है ही नहीं, यदि आप किसी को परेशान नहीं करो तो। उसकी मैं आपको गारन्टी लिख देता हूँ। यहाँ निरे साँप पड़े हों, फिर भी कोई आपको छुएगा नहीं, ऐसा गारन्टी वाला जगत् है।

ये ज्ञानी किस तरह सहीसलामत और आनंद में रहते होंगे? क्योंकि ज्ञानी जगत् को जानकर बैठे हुए हैं कि 'कुछ भी होने वाला नहीं है, कोई नाम देने वाला नहीं है, मैं ही हूँ सब में, मैं ही हूँ, मैं ही हूँ, दूसरा कोई है ही नहीं!'

बहुत समझने जैसा जगत् है। लोग समझते हैं वैसा यह नहीं है। आप किसीको परेशान करो तो सामने वाले को प्रतिपक्षी भाव उत्पन्न हुए बगैर रहेंगे ही नहीं। सामने वाला बलवान नहीं हो, तो बोलेगा नहीं, परंतु मन में तो होगा न? आप बोलना बंद करो तो सामने वाले के भाव बंद हो जाएँगे फिर। जिस घड़ी आपकी दखलंदाज़ी बंद हो जाएगी, तब आपका कोई परिणाम आपके पास नहीं आएगा। आप पूरी दुनिया के, पूरे ब्रह्मांड के स्वामी हो। कोई *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) ही नहीं है आपका। आप परमात्मा ही हो। कोई आपको पूछने वाला नहीं है।

(सूत्र-6)

द वर्ल्ड इज़ यॉर ऑन प्रोजेक्शन (जगत् आपकी ही योजना है)। किसी की भी दखलंदाज़ी नहीं मिलेगी, ज़रा सा भी दखल नहीं है। आपका प्रोजेक्शन और आपकी ही प्लानिंग।

कोई किसी का बिगाड़ सके, ऐसी शक्ति ही नहीं है किसी में, कोई ऐसा जन्मा ही नहीं है। लोग क्या मानते हैं? यही मेरा सबकुछ बिगाड़ रहा है। किसी में ऐसी शक्ति ही नहीं है, तो फिर कैसे बिगाड़ पाएगा? और कोई बिगाड़ सके तब तो यह जगत् बिल्कुल कॉम्प्लेक्स (जटिल) हो गया, ऐसा कहा जाएगा। तो फिर एक भी व्यक्ति यहाँ से मोक्ष में जा ही नहीं सकेगा। इसलिए कोई भी व्यक्ति आपको दु:ख दे सके, ऐसा है ही नहीं। उसकी शक्ति से बाहर की बात है।

यह दु:ख देते हैं, वह तो निमित्त मात्र है लेकिन मूल भूल खुद की ही है। जो फायदा करता है, वह भी निमित्त है और जो नुकसान करवाता है, वह भी निमित्त है। लेकिन वह अपना ही हिसाब है, इसलिए ऐसा होता है। हम आपसे साफ-साफ कह देते हैं कि आपकी 'बाउन्ड्री' में किसी को उँगली डालने की शक्ति नहीं है और यदि आपकी भूल है तो कोई भी उँगली डाल सकता है। अरे, लाठी भी मारेगा। 'हम' तो पहचान गए हैं कि कौन दु:ख दे रहा है? सभी आपका अपना ही है! आपका व्यवहार किसी और ने नहीं बिगाड़ा। आपका व्यवहार आपने ही बिगाड़ा है। यू आर होल एन्ड सोल रिस्पोन्सिबल फोर यॉर (पूर्णरूप से सारी जिम्मेदारी आपकी ही है) व्यवहार।

कोई जीव किसी जीव को परेशान कर ही नहीं सकता। यदि एक जीव दूसरे जीव को परेशान कर सकता तो 'यह वर्ल्ड गलत है, ऐसा कहा

जा सकता है।' इस वर्ल्ड का सिद्धांत खत्म हो जाता है, टूट जाता है। कोई जीव किसी जीव को ज़रा सा भी परेशान कर सके, अगर उसमें उतनी स्वतंत्र शक्ति होती तो पूरे वर्ल्ड के सभी सिद्धांत फ्रेक्चर हो जाते हैं।

इस वर्ल्ड में, किसी का दखल हो जाता है, वह आपने दखलंदाज़ी की हुई है इसलिए। वर्ना आप दखलंदाज़ी नहीं करें तो कोई दखल नहीं है, बिल्कुल स्वतंत्र हो। अन्य की दखलंदाज़ी है, ऐसा कहेंगे तो कॉम्प्लेक्स हो जाएगा, लेकिन किसी का दखल नहीं है। कोई जीव किसी जीव का कुछ भी नहीं कर सकता, इतना स्वतंत्र है यह जगत्!

(सूत्र-7)

संसार में इस प्रकार जीना चाहिए कि आप किसी के लिए दुःखदायी न हो जाएँ। आपसे किसी को किंचित्मात्र भी दुःख नहीं हो, यही सब से बड़ा ध्येय होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा, मुझसे दखल हो गई हो और मैंने उसे देखा-जाना, लेकिन मेरी इस दखल से सामने वाले को दुःख पहुँचा तो मुझे उसका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा न?

दादाश्री : उसका प्रतिक्रमण तो करना पड़ेगा। अतिक्रमण क्यों किया? सामने वाले को दुःख हो, ऐसा नहीं करना चाहिए।

इस जगत् में आप किसी को दुःख दोगे, तो उसका प्रतिस्पंदन आप पर पड़े बगैर रहेगा नहीं। किसीको किंचित् मात्र दुःख देकर कोई मोक्ष में नहीं गया है। संसार में इस प्रकार जीना चाहिए कि आप किसी के लिए दुःखदायी न हो जाएँ। आपसे किसी को किंचित्मात्र भी दुःख नहीं हो, यही सब से बड़ा ध्येय होना चाहिए। किसीको थोड़ा-सा भी दुःख दे तो वह जाग्रत किस तरह कहा जाएगा? जागृति किसे कहा जाता है? खुद, स्वयं से कभी भी किसी भी संयोग में क्लेशित नहीं हो, वहाँ से जागृति की शुरूआत होती है। फिर दूसरे 'स्टेपिंग' में दूसरे से भी खुद क्लेशित नहीं होता, तभी से अंत सहज समाधि तक की जागृति होती है। यदि जाग गए तो जागने का फल होना चाहिए। क्लेश हो तो जाग गए किस तरह कहा जाएगा? क्लेश रहित भूमिका करनी, उसे बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया कहा जाता है।

आप संपूर्ण स्वतंत्र हो। आपका प्रोजेक्ट भी स्वतंत्र है, लेकिन आपका प्रोजेक्ट ऐसा होना चाहिए कि किसी जीव को आपसे किंचित्मात्र दुःख न हो। आपका प्रोजेक्ट बहुत बड़ा करो, सारी दुनिया जितना करो।

मनुष्य ने जब से किसी को सुख पहुँचाना शुरू किया तब से धर्म की शुरुआत हुई। खुद के सुख का नहीं, लेकिन सामने वाले की अड़चन कैसे दूर हो, यही रहा करे वहाँ से कारुण्यता की शुरुआत होती है। हमें बचपन से ही सामने वाले की अड़चन दूर करने की पड़ी थी। खुद के लिए विचार भी नहीं आए, वह कारुण्यता कहलाती है। उससे ही 'ज्ञान' प्रकट होता है।

(सूत्र-8)

खुद की भूल पकड़ में नहीं आती है और सामने वाले की भूल तुरंत पता चल जाती है। क्योंकि बुद्धि का उपयोग किया है न! इस प्रकार इस जगत् में दखल हो रही है।

भगवान का अलौकिक ज्ञान तो क्या कहता है कि किसी पर आरोप ही मत लगाना, किसी के लिए अभिप्राय मत बाँधना। किसी के लिए कोई भाव ही मत करना। 'जगत् निर्दोष ही है' ऐसा जानोगे तो छूट जाओगे। जगत् के तमाम जीव निर्दोष ही हैं और मैं अकेला ही दोषित हूँ,

मेरे ही दोषों के कारण मैं बंधा हुआ हूँ, ऐसी दृष्टि हो जाएगी, तब छूटा जा सकेगा।

जब तक खुद के दोष नहीं दिखते और दूसरों के ही दोष दिखते रहते हैं, जब तक वैसी दृष्टि है तब तक संसार खड़ा रहेगा। और जब औरों का एक भी दोष नहीं दिखेगा और खुद के सभी दोष दिखेंगे, तब समझना कि मोक्ष में जाने की तैयारी हुई। बस इतना ही दृष्टिफेर है! दूसरों के दोष दिखाई देते हैं, वही अपनी ही दृष्टि में भूल है।

इस प्रकार इस जगत् में दखल हो रही है। खुद की भूल पकड़ में नहीं आती है और सामने वाले की भूल तुरंत पता चल जाती है। क्योंकि बुद्धि का उपयोग किया है न! और जिसकी बुद्धि का उपयोग नहीं हुआ उसे तो कोई भूल होने का सवाल ही नहीं रहता है न, कोई शिकायत ही नहीं है न!

तेरे साथ कोई टकराया क्यों? वही तेरा दोष है। सबकुछ खुद के दोषों से ही बंधा हुआ है। मात्र खुद के दोष देखने से छूट सकें, ऐसा है।

इस निर्दोष जगत् में कोई दोषित है ही नहीं, वहाँ किसे दोष दें? दोष है, तब तक दोष, वह अहंकार भाग है और वह भाग धुलेगा नहीं, तब तक सारे दोष निकलेंगे नहीं, तब तक अहंकार निर्मूल नहीं होगा। अहंकार निर्मूल हो जाए, तब तक दोष धोने हैं। 'हम' अपने दोषों को देखते रहे, इसलिए 'हम' छूट गए। निजदोष समझ में आए तो छूटता जाता है।

हम जब स्वरूप का ज्ञान देते हैं, तब ज़रा आँख खुलती है। तब उसे दिखता है कि मैं तो इन सबसे जुदा हूँ। फिर जैसे-जैसे हमारे साथ बैठता है, वैसे-वैसे आँख खुलती जाती है। फिर संपूर्ण जागृति हो जाती है। इसलिए आत्मा को जानना पड़ेगा। आत्मा जाने बिना तो वहाँ पर कोई जाने ही नहीं देगा। यह तो एक्ज़ेक्ट वस्तु है, परम ज्योतिस्वरूप प्राप्त कर लिया है। अब, इसमें हेर-फेर मत करना बेवजह। अनंत जन्मों में भी प्राप्त नहीं किया ऐसा परम ज्योतिस्वरूप इसीलिए तो यहाँ पर आप आते हो। वर्ना कोई आ पाता? अब भीतर बुद्धि दखल करती है, उस बुद्धि को छुट्टी दे देना। इसमें हाथ मत डालना, कहना। अभी तो वह दबी हुई रहती है, ज्ञानी से ज़रा से भी दूर हुए कि वापस चढ़ बैठेगी। इसलिए सचेत रहना।

(सूत्र-9)

तू यदि गलती से भी किसी से टकराव में आ गया तो उसका *निकाल* कर देना। सहज रूप से उस टकराव में से घर्षण की चिंगारी उड़ाए बगैर निकल जाना। एक क्षण के लिए भी, किसी भी अवस्था से चिपककर रहने जैसा नहीं है! जहाँ तू चिपका, उतना तू स्वरूप को भूला।

प्रश्नकर्ता : टकराव टालने की, 'समभाव से *निकाल*' करने की हमारी वृत्ति होती है, फिर भी सामने वाला व्यक्ति हमें परेशान करे, अपमान करे, तो क्या करना चाहिए हमें?

दादाश्री : कुछ नहीं। वह आपका हिसाब है, तो उसका 'समभाव से *निकाल*' करना है आपको ऐसा निश्चित रखना चाहिए। आपको अपने नियम में ही रहना चाहिए, और अपने आप अपना 'पज़ल' 'सॉल्व' करते रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सामने वाला व्यक्ति अपना अपमान करे और हमें अपमान लगे, उसका कारण अपना अहंकार है?

दादाश्री : सच में तो सामने वाला अपमान करता है, तब वह आपका अहंकार पिघला देता है, और वह भी 'ड्रामेटिक' अहंकार। जितना एक्सेस अहंकार होता है वह पिघलता है, उसमें

क्या बिगड़ जाने वाला है? ये कर्म छूटने नहीं देते हैं। आपको तो, छोटा बच्चा सामने हो तो भी कहना चाहिए, अब छुटकारा कर।

हमारे एक शब्द का, एक दिन पालन करे तो गज़ब की शक्ति उत्पन्न होगी! यानी प्रभाव उत्पन्न होता ही जाएगा। अंदर इतनी सारी शक्तियाँ हैं कि कोई भी कैसा भी टकराव करे तो भी उसे टाला जा सकता है। जो जान-बूझकर खाई में गिरने की तैयारी में है, उसके साथ आप उलझें तो वह आपको भी खाई में गिराएगा। आपको तो मोक्ष में जाना है या ऐसों के साथ झगड़ने यहीं बैठे रहना है? वे तो कभी मोक्ष में नहीं जाएँगे पर तुझे भी अपने साथ बैठाकर रखेंगे। अरे, ऐसा कैसे पुसाएगा? यदि तुझे मोक्ष में ही जाना है तो ऐसों के साथ बहुत अक्लमंदी दिखाने की ज़रूरत नहीं है कि भाई, आपको लग गया क्या? हर ओर से, चारों ओर से संभालना, वर्ना आप इस जंजाल से लाख छूटना चाहें, मगर संसार छूटने नहीं देगा। टकराव तो निरंतर आता ही रहेगा। उसमें से आपको ज़रा सा भी घर्षण उत्पन्न किए बगैर स्मूदली (आसानी से) बाहर निकल जाना है! देह का टकराव हो जाए और चोट लगी हो तो इलाज करवाने से ठीक हो जाता है, परंतु घर्षण और संघर्षण से मन में जो दाग़ पड़ गए हों, बुद्धि के दाग़ पड़ गए हों तो उन्हें कौन निकालेगा? हज़ारों जन्मों तक भी नहीं जाएँगे।

अरे, हम तो यहाँ तक कहते हैं कि यदि तेरी धोती झाड़ी में फँस जाए और तेरी मोक्ष की गाड़ी चलने को हो तो भाई, धोती छुड़वाने के लिए बैठे मत रहना! धोती-वोती छोड़कर दौड़ जाना।' अरे! एक क्षण के लिए भी, किसी भी अवस्था से चिपककर रहने जैसा नहीं है! फिर और सभी की तो बात ही क्या करनी? जहाँ तू चिपका, उतना तू स्वरूप को भूला। दखल किसे कहते हैं? अगर कोई भी अवस्था आए और उसमें चित्त कुछ देर के लिए चिपक जाए तो वह दखल है।

तू यदि गलती से भी किसी से टकराव में आ गया तो उसका *निकाल* कर देना। सहज रूप से उस टकराव में से घर्षण की चिंगारी उड़ाए बगैर निकल जाना। बुद्धि तो किसे कहेंगे कि जो क्रोध-मान-माया-लोभ का विवरण करे और उन सभी को एक तरफ रख दे और घर में टकराव न होने दे। 'एवरीव्हेर एडजस्टमेन्ट' करवाए।

(सूत्र-10)

किसी के भी लिए दखल (रुकावट) रूप होंगे तो सब से पहले दखल आपको ही आएगी। अर्थात् इतने सरल हो जाओ कि किसी को ज़रा सी भी दखल न हो, तो आपको भी दखल नहीं होगी। मैंने शुरू से इसी तरह की प्रेक्टिस रखी है।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में रहना है, इसलिए 'एडजस्टमेन्ट' एक पक्षीय तो नहीं होना चाहिए न?

दादाश्री : व्यवहार तो उसी को कहेंगे कि, एडजस्ट हो जाएँ। जिसके साथ रास न आए, वहीं पर शक्तियाँ विकसित करनी हैं। अनुकूल है, वहाँ तो शक्ति है ही। प्रतिकूल लगना, वह तो कमज़ोरी है।

मुझे सब के साथ क्यों अनुकूलता रहती है? जितने 'एडजस्टमेन्ट' लोगे, उतनी शक्तियाँ बढ़ेंगी और अशक्तियाँ टूट जाएँगी। सही समझ तो तभी आएगी, जब सभी प्रकार की उल्टी समझ को ताला लग जाएगा।

नरम स्वभाव वालों के साथ तो हर कोई 'एडजस्ट' होगा लेकिन अगर टेढ़े, कठोर, गर्म मिज़ाज लोगों के साथ, सभी के साथ 'एडजस्ट' होना आ जाएगा तो काम बन जाएगा। कितना ही

नंगा-लुच्चा व्यक्ति क्यों न हो, फिर भी उसके साथ 'एडजस्ट' होना आ जाए, दिमाग़ फिरे नहीं, तो वह काम का है! भड़क जाओगे तो नहीं चलेगा। संसार की कोई चीज़ हमें 'फिट' नहीं होगी, हम ही उसे 'फिट' हो जाएँ तो दुनिया सुंदर है और यदि उसे 'फिट' करने गए तो दुनिया टेढ़ी है। इसलिए 'एडजस्ट एवरीव्हेर!' आप उसे 'फिट' हो जाओ तो कोई हर्ज नहीं है।

तेरे साथ जो-जो डिसएडजस्ट होने आए, उसके साथ तू एडजस्ट हो जा। जिसे एडजस्टमेन्ट लेना नहीं आता, उसे लोग 'मेन्टल' (पागल) कहते हैं। इस रिलेटिव सत्य में आग्रह, ज़िद करने की ज़रा सी भी ज़रूरत नहीं है। 'मनुष्य' तो कौन है कि 'जो एवरीव्हेर एडजस्टेबल हो जाए।' हर बात में आप सामने वाले के साथ एडजस्ट हो जाएँ तो कितना सरल हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : दुनिया टेढ़ी है लेकिन हम अपने स्वभाव के अनुसार सरलता से बर्ताव करें तो मूर्ख माने जाते हैं। तो सरलता छोड़कर टेढ़े बन जाएँ या मूर्ख माने जाएँ?

दादाश्री : ऐसा है कि कितने ही जन्मों की कमाई हो, तब जाकर सरलता उत्पन्न होती है। जो टेढ़ा है, वह हमारी कमाई खो जाए, यही चाहता है, तो क्या हम अपनी कमाई खो दें? खुद अपनी कमाई खो देंगे तो हम भी टेढ़े ही हो जाएँगे, तो फिर अपने पास रहा क्या? सामान सब खत्म हो जाएगा! और फिर दिवालिया निकलेगा!

मोक्ष में जाना हो तो सरल हो जाओ, बालक जैसे सरल हो जाओ। ये बालक तो नासमझी में ऐसा करते हैं और 'ज्ञानी पुरुष' समझकर करते हैं, बस! दोनों में बचपना है तो सही, निर्दोषता बालक जैसी! बालक नहीं समझता फिर भी उसका संसार चलता है या नहीं चलता? बल्कि और अच्छा चलता है। जैसे-जैसे समझदारी आती है, वैसे उसका संसार बिगड़ता चला जाता है। अत: 'ज्ञानी पुरुष' तो बालक जैसे सरल होते हैं!

प्रश्नकर्ता : तो दादा, आप शुरू से ही सरल थे यानी कि किसी को दखल रूपी नहीं हुए?

दादाश्री : किसी के भी लिए दखल (रुकावट) रूप होंगे तो सब से पहले दखल आपको ही आएगी। अर्थात् इतने सरल हो जाओ कि किसी को ज़रा सी भी दखल न हो, तो आपको भी दखल नहीं होगी। मैंने शुरू से इसी तरह की प्रेक्टिस रखी है। मैंने तो बचपन से यही तरीका रखा है क्योंकि दखल करने के बाद हम खुद दखल रूपी हो जाएँगे।

सामने वाला टेढ़ा हो फिर भी 'ज्ञानी' तो उसके साथ 'एडजस्ट' हो जाते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' को देखकर चलेगा तो सभी तरह के एडजस्टमेन्ट लेना सीख जाएगा। इसके पीछे का साइन्स क्या कहता है कि वीतराग बन जाओ, राग-द्वेष मत करो। यह तो भीतर थोड़ी आसक्ति रह जाती है, इसलिए मार पड़ती है। व्यवहार में जो एकपक्षीय-निस्पृह हो चुके हों, वे टेढ़े कहलाते हैं।

(सूत्र-11)

व्यवहार में दखलंदाज़ी करते हो, वह अशुद्ध व्यवहार है। व्यवहार में 'एडजस्टमेन्ट' लेना, उसे इस काल में ज्ञान कहा है।

हम वास्तव में यह 'व्यवहार स्वरूप' नहीं हैं, 'यह' सारा सिर्फ 'टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट' है। जिस तरह बच्चे खिलौनों से खेलते हैं, वैसे ही पूरा जगत् खिलौनों से खेल रहा है! खुद अपने हित का कुछ करता ही नहीं। निरंतर परवशता के दु:ख में ही रहता है और टकराता रहता है। संघर्षण और घर्षण से आत्मा की अनंत शक्तियाँ सभी फ्रेक्चर हो जाती हैं।

नौकर कप-प्लेट फोड़ दे तो अंदर संघर्षण हो जाता है, उसका क्या कारण है? भान नहीं है, जागृति नहीं है कि मेरा कौन सा और पराया कौन सा? पराये का, मैं चलाता हूँ या और कोई चलाता है?

यह जो आपको ऐसा लगता है कि 'मैं चलाता हूँ', तो उसमें से आप कुछ भी नहीं चलाते हो। वह तो आप सिर्फ मान बैठे हो। आपको जो चलाना है उसका आपको पता ही नहीं है। पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ होता है। पुरुष ही नहीं बने, तब तक पुरुषार्थ किस तरह से होगा?

'डोन्ट सी लॉज़, प्लीज़ सेटल। (नियम मत देखो, कृपया समाधान लाओ।)' सामने वाले को 'सेटलमेन्ट' लेने को कहना कि 'आप ऐसा करो, वैसा करो', ऐसा कहने के लिए वक्त ही कहाँ है? सामने वाले की सौ भूलें हों, फिर भी आपको तो यह कहकर आगे बढ़ जाना है कि मेरी ही भूल है। इस काल में लॉ (नियम) थोड़े ही देखा जाता है? यह तो आखिरी हद तक पहुँच चुका है। जहाँ देखें वहाँ भागदौड़, भागम्भाग! लोग उलझ गए हैं।

व्यवहार में दखलंदाज़ी करते हो, वह अशुद्ध व्यवहार है। व्यवहार में एडजस्टमेन्ट लेना, उसे इस काल में 'ज्ञान' कहा है। हाँ, एडजस्टमेन्ट लेना। एडजस्टमेन्ट टूट रहा हो तब भी एडजस्ट कर लेना। आपने उसे भला-बुरा बोल दिया। अब बोलना, यह आपके बस की बात नहीं है। आपके मुँह से कभी निकल जाता है या नहीं? बोल तो दिया, लेकिन बाद में तुरंत ही आपको पता तो चल जाता है कि गलती हो गई। पता चले बगैर नहीं रहता, लेकिन उस समय आप एडजस्ट करने नहीं जाते। बाद में तुरंत उसके पास जाकर कहना चाहिए कि, 'भाई, मेरे मुँह से उस वक्त भला-बुरा निकल गया था, भूल हो गई। इसलिए क्षमा करना।' तो एडजस्टमेन्ट हो गया। इसमें कोई हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कोई हर्ज नहीं है।

दादाश्री : 'एडजस्ट एवरीव्हेर', यह वाक्य आपका संसार 'टॉप' पर ले जाएगा। व्यवहार में भी 'टॉप' पर गए बिना कोई मोक्ष में नहीं गया है। व्यवहार आपको नहीं छोड़ेगा, उलझाता रहे तो आप क्या करोगे? इसलिए व्यवहार का फटाफट हल ला दो। दखल करने से कितने ही जन्म बढ़ जाएँगे। इसकी वैल्यूएशन मत करना और (आत्मा की) डिवैल्यूएशन मत होने देना। व्यवहार की वैल्यूएशन नहीं करना और आत्मा की डिवैल्यूएशन न हो ऐसा देखकर व्यवहार करना। व्यवहार बगैर चलेगा ही नहीं, ऐसा नहीं बोलना। यदि कभी बोलना पड़े तो निश्चय बगैर नहीं चलेगा, ऐसा बोलना। इस विवेक को समझ लेना है।

व्यवहार समझेगा तभी निश्चय समझ पाएगा। निश्चय को निश्चय में रखना और व्यवहार को व्यवहार में रखना, उसे शुद्ध व्यवहार कहते हैं!

(सूत्र-12)

'कॉमनसेन्स' यानी क्या? एवरीव्हेर एप्लिकेबल, थ्योरीटिकली एज़ वेल एज़ प्रैक्टिकली! कॉमनसेन्स वाला घर में या बाहर कहीं भी झगड़ा होने ही नहीं देता।

व्यवहार शुद्ध करने के लिए क्या चाहिए? 'कॉमनसेन्स कम्प्लीट' चाहिए। स्थिरता-गंभीरता चाहिए। व्यवहार में 'कॉमनसेन्स' की ज़रूरत है। स्वरूपज्ञान के साथ 'कॉमनसेन्स' हो तो बहुत दीपायमान होगा।

प्रश्नकर्ता : 'कॉमनसेन्स' वाला हो तो सभी जगह हल ला देता है न?

दादाश्री : 'कॉमनसेन्स' वाला तो बहुत प्रकार से हल ला देता है, व्यवहार की सभी गुत्थियाँ सुलझा देता है।

प्रश्नकर्ता : उसे टकराव होता है?

दादाश्री : टकराव कम होते हैं। यदि टकराव नहीं करवाने वाली कोई चीज़ हो तो वह 'कॉमनसेन्स' ही है!

प्रश्नकर्ता : 'कॉमनसेन्स' किस तरह प्रकट होता है?

दादाश्री : कोई खुद से टकराए, लेकिन खुद किसी से नहीं टकराए, इस तरह से रहे, तो 'कॉमनसेन्स' उत्पन्न होता है। लेकिन खुद को किसी से टकराना नहीं चाहिए, नहीं तो 'कॉमनसेन्स' चला जाएगा! घर्षण खुद की तरफ से नहीं होना चाहिए।

सामने वाले के घर्षण से 'कॉमनसेन्स' उत्पन्न होता है। यह आत्मा की शक्ति ऐसी है कि घर्षण के समय कैसा बर्ताव करना, उसका सब उपाय बता देती है और एक बार बता दें, फिर वह ज्ञान जाता नहीं है। ऐसे करते-करते 'कॉमनसेन्स' इकट्ठा होता है।

अब, जनरेशन टु जनरेशन 'कॉमनसेन्स' कम होता गया है। 'कॉमनसेन्स' वाला व्यक्ति 'एवरीव्हेर एडजस्टेबल' होता है। कोई गालियाँ दे तो उसके साथ भी 'एडजस्ट' होकर कहेगा, 'आइए, आइए, बैठिए न! कोई बात नहीं।' यानी, 'कॉमनसेन्स' की ज़रूरत पड़ेगी। जबकि यहाँ तो, 'बेअक्ल हो,' ऐसा कहते ही मुँह फूल जाता है। अरे, 'कॉमनसेन्स' नहीं है? तेरा मुँह किसलिए फूल गया इसमें?! 'अक्ल वाला हूँ' ऐसा अपने आपको मान बैठा है तू! देखो, अक्ल के बोरे! ये आए बड़े अक्ल के बोरे! बेचने जाएँ तो चार आने भी नहीं आएँ। और बेकार ही अकड़ता रहता है। अक्ल वाला तो 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल' वाला होता है। इस काल में तो 'कॉमनसेन्स' मुश्किल हो गया है।

मैं सब से ऐसा नहीं कहता कि आप सब मोक्ष में चलो। मैं तो ऐसा कहता हूँ कि जीवन जीने की कला सीखो। 'कॉमनसेन्स' थोड़ा-बहुत तो मानो सीखते हैं, लोगों के पास से! सेठ से मैंने कहा, 'कॉमनसेन्स' होता तो ऐसा जीवन होता ही नहीं। सेठ ने पूछा, 'कॉमनसेन्स यानी क्या?' मैंने कहा, 'कॉमनसेन्स यानी एवरीव्हेर एप्लिकेबल-थ्योरिटिकली एज़ वेल एज़ प्रैक्टिकली। चाहे जैसा ताला हो, जंग लगा हुआ हो या कैसा भी हो लेकिन चाबी डालें कि तुरंत खुल जाए, वह कॉमनसेन्स है। आपके ताले तो खुलते नहीं, झगड़े करते हो और ताले तोड़ते हो! अरे, ऊपर बड़ा हथौड़ा मारते हो!'

आपको मतभेद होता है? मतभेद यानी क्या? ताला खोलना नहीं आया! वैसा 'कॉमनसेन्स' कहाँ से लाए? मेरा कहना यह है कि पूरी तीन सौ साठ डिग्री का 'कॉमनसेन्स' नहीं हो सकता परंतु चालीस डिग्री, पचास डिग्री का तो आ सकता है न? वैसा ध्यान में रखा हो तो?

कॉमनसेन्स वाला घर में मतभेद होने ही नहीं देता। वह कॉमनसेन्स कहाँ से लाएँ? वह तो 'ज्ञानी पुरुष' के पास बैठें, 'ज्ञानी पुरुष' के चरणों का सेवन करें, तब 'कॉमनसेन्स' उत्पन्न होता है। 'कॉमनसेन्स' वाला घर में या बाहर कहीं भी झगड़ा होने ही नहीं देता।

(सूत्र-13)

जो आज्ञा में नहीं रहता वह दखल कर देता है। आप जैसे-जैसे हमारी आज्ञा में रहकर आगे बढ़ते जाओगे, वैसे-वैसे आप पर हमारा राजीपा बढ़ता जाएगा।

जहाँ शुद्ध व्यवहार नहीं है, जहाँ पर व्यवहार का फाउन्डेशन ही नहीं है, वहाँ पर निश्चय जैसी कोई चीज़ है ही नहीं। और व्यवहार शुद्धि के

बिना निश्चय कभी काम ही नहीं करेगा। शुद्ध व्यवहार के बेसमेन्ट (आधार) पर शुद्ध निश्चय खड़ा है। शुद्ध व्यवहार का बेसमेन्ट जितना कच्चा उतना निश्चय प्राप्त नहीं कर सकोगे। क्योंकि निश्चय का नियम ऐसा है कि शुद्ध व्यवहार होगा तभी निश्चय शुद्ध होगा। और अपने यहाँ तो 'फुल' (पूर्ण) व्यवहार सहित धर्म है। 'फुल' निश्चय और 'फुल' व्यवहार। हमारी जो पाँच आज्ञा दी हैं न, वह संपूर्ण व्यवहार धर्म है।

अर्थात् हम तो क्या कहते हैं कि अपना शुद्ध व्यवहार और शुद्ध निश्चय, ऐसा मार्ग है यह, अक्रम विज्ञान है। हमने जो आज्ञाएँ दी हैं उन आज्ञाओं के अधीन आपका शुद्ध व्यवहार है। फिर पालन न करे, कम पालन करे, वह बात अलग है। लेकिन आज्ञाधीन व्यवहार है, वह शुद्ध व्यवहार है।

अपना तो पाँच आज्ञा का पालन करें तो मोक्ष। बाकी सब तो बखेड़ा कहलाएगा। फिर यदि आज्ञा का कम-ज़्यादा पालन हो, उसमें हर्ज नहीं लेकिन पाँच आज्ञा का लक्ष्य रहना चाहिए। जैसे यहाँ रोड पर जो ड्राइविंग करते हैं, उनके लक्ष्य में रहता ही है कि ट्रैफिक के नियम क्या हैं! ऐसा लक्ष्य में रहता ही है वर्ना टकरा जाएगा। यहाँ का टकराया हुआ दिखाई देता है लेकिन वहाँ टकराया हुआ दिखाई नहीं देता न! और तहस-नहस हो जाता है। लोगों को पता नहीं चलता।

आप हमारी पाँच आज्ञा में रहते हो इसलिए मैं बहुत खुश हूँ। जो आज्ञा में नहीं रहता वह दखल कर देता है।

हमारी आज्ञा के प्रति सिन्सियर (निष्ठावान) रहना, वह तो बहुत बड़ा मुख्य गुण कहलाता है। हमारी आज्ञा से जो अबुध हुआ वह हमारे जैसा ही हो जाएगा न! लेकिन जब तक आज्ञा का सेवन करता है, तब तक आज्ञा में बदलाव नहीं होना चाहिए। तो परेशानी नहीं आएगी।

कैसे भी प्रश्न का सॉल्यूशन ला सकें, इतना आ गया न, तो बहुत हो गया। उलझनें तो आएगी। न सुनी हुई, न देखी हुई, उलझनें आएगी। लेकिन ये पाँच शब्द (आज्ञा) सॉल्यूशन (हल) ला दें, ऐसे हैं। इन पाँच शब्दों पर तो विचार करने जैसा है। विवरण करने जैसा है, इनके अलावा जगत् में कोई चीज़ नहीं है।

अपनी ये जो पाँच आज्ञा हैं न, वे कॉमनसेन्स भी लाएँ, ऐसी हैं। अपना ज्ञान मिलने के बाद व्यक्ति जल्दी ही बुद्धिशाली हो सकता है। क्योंकि पाँच वाक्यों का सार मिल गया न! ज्ञान से आज्ञा पालन करे तो सर्वत्र परिणाम प्राप्त होता ही है और बुद्धि से आज्ञा पालन करे तो कोई परिणाम प्राप्त नहीं होता!

(सूत्र-14)

'हमारी' एक ही आज्ञा का संपूर्ण रूप से पालन कर लें न, तो एकावतारी हो सकें, वैसा है! फिर जैसी जिसकी समझ। लेकिन अबुध होकर काम निकाल ले, तो!

प्रश्नकर्ता : (ज्ञान लेने के बाद) बुद्धि का त्याग कैसे कर सकते हैं?

दादाश्री : बुद्धि का त्याग नहीं करना है। बुद्धि का यों त्याग कर सकें, वह ऐसी चीज़ नहीं है। उसका तो अंदर भाव रखना है कि मुझे अब बुद्धि की ज़रूरत नहीं है। ऐसा भाव रखने से, वह दिन प्रति दिन कम होती जाएगी और बुद्धि की ज़रूरत है ऐसा भाव होगा तब तक बुद्धि बढ़ती जाएगी। यह बुद्धि तो मनुष्य को इमोशनल करती है और दखल ही करती रहती है। बाकी, बुद्धि की जितनी ज़रूरत है, वह तो अपने आप कुदरती रूप से है ही।

बुद्धि घुमाती है तब आपको परेशान कर देती है। इसलिए आपको पहले से ही कह देना

है, 'तू मुझे सलाह ही मत देना। मुझे तेरी सलाह नहीं चाहिए। बहुत दिनों तक संसार में तेरी सलाह काम आई। बेटे की शादी करते समय, बेटी की शादी करते समय, हर बार तेरी सलाह काम आई है लेकिन अब तो मुझे मोक्ष में जाना है। तेरी सलाह का अब काम नहीं है।'

प्रश्नकर्ता : अर्थात् अपना भाव अंत तक अबुध होने का होना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, बस इतना ही होने की ज़रूरत है। सिर्फ वह भाव ही आपके हाथ में है, कर्तव्य आपके हाथ में नहीं है। कर्तव्य तो अज्ञान है तब तक कर्तव्य है। इस ज्ञान से कर्तव्य नहीं रहता।

मेरा यह ज्ञान देने के बाद यदि बुद्धि का उपयोग न करे तो ज्ञानी पुरुष जैसे रहेगा। ज्ञान मिलने के बाद जो बुद्धि का आसरा लेता है वह मूर्ख कहलाता है।

आपको बुद्धि से कह देना है कि 'तू बैठ। बहुत दिनों तक तूने काम किया है, इसलिए अब तुझे पेन्शन दे देंगे। तेरी पेन्शन चलती रहेगी।' अभी तो बुद्धि का अमल रहता है। जहाँ इतना बड़ा प्रकाश हुआ है, पूरे वर्ल्ड का प्रकाश उत्पन्न हुआ है, वहाँ अब इस बुद्धि का दीया क्यों जलाए रखा है? अर्थात् अबुध होने की ज़रूरत है। हम ऐसा किसलिए कहते हैं, कि हम अबुध होकर बैठे हैं।

बुद्धि दादा को सौंप देनी है, वह बहुत अच्छा है। गिरवी नहीं रखनी है, हमेशा के लिए सौंप देनी है। 'ज्ञानी पुरुष' की आज्ञापूर्वक अंत तक का जो भी करना है, वह कर लेना चाहिए, ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलता!

आप 'हमारी' 'पाँच आज्ञा' में रहो, वही पुरुषार्थ है, वही धर्म है! अन्य कोई पुरुषार्थ नहीं है। उसमें सबकुछ आ गया।

(सूत्र-15)

दखलंदाज़ी सिर्फ ये अहंकार और ममता दोनों की ही हैं। ये दोनों न हों तो कुछ नहीं है। सॉल्यूशन (हल) अपने आप ही आते रहते हैं। आपको कुछ नहीं करना है। मैंने जो पाँच वाक्य दिए हैं, उनसे सब सॉल्यूशन आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो जितनी मात्रा में बुद्धि कम होती जाएगी उतना ज्ञान प्रकट होता जाएगा?

दादाश्री : आपकी यह बुद्धि कम ही होती जाएगी, यह ज्ञान लेने के बाद। यह विज्ञान ऐसा है, कि बुद्धि कम ही करता जाता है। क्योंकि पहले द्वेष खत्म हो जाता है न! यानी वीतद्वेष हो चुका है न! इसलिए हमेशा बुद्धि कम होती ही जाती है और आगे बढ़ता रहता है। बुद्धि को एक तरफ बैठा देंगे तो सहज सुख बरतेगा! बुद्धि चले जाने के बाद आनंद बहुत बढ़ता जाता है। यह आनंद का धाम ही है लेकिन बीच में बुद्धि दखल करती है।

प्रश्नकर्ता : यह जो आनंद का धाम है, वह क्या है?

दादाश्री : मैंने आपको जो दिया है, वह आनंद का धाम ही दिया है, मोक्ष ही दिया है। बुद्धि बीच में आती है इसलिए दखल करती है।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि को बिदा कर दो कहा है, वह क्या है?

दादाश्री : इस बुद्धि के कारण अहंकार खड़ा हो गया है। अहंकार के कारण संसार खड़ा हो गया है। जब बुद्धि, अहंकार दोनों का ही उपयोग नहीं होगा, तब मुक्ति का मार्ग प्रकाशित होगा, संपूर्ण ज्ञान प्रकाश होगा!

दखलंदाज़ी सिर्फ ये अहंकार और ममता दोनों की ही है। ये दोनों न हो तो कुछ नहीं

है। आप अहंकार से दखल देते हो। अहंकार सब दखल कर देता है और उसी से दखलंदाज़ी हो जाती है फिर। लेकिन अपने ज्ञान में दखल-वखल निकाली हो जाते हैं। अभी जैसे-जैसे बुद्धि कम होती जाएगी, बुद्धि का उपयोग नहीं होगा, वैसे-वैसे अहंकार कम होगा।

प्रश्नकर्ता : अब हम तो बुद्धि के स्तर में ही हैं न? यानी हम बुद्धि के अंत तक पहुँच जाएँगे, उसके बाद वह प्रकाश है न?

दादाश्री : नहीं, वह बुद्धि तो धीरे-धीरे कम ही होती जाएगी। वह अपने आप ही कम होती जाएगी, जैसे-जैसे अहंकार कम होता जाएगा वैसे-वैसे। अभी आपको विश्वास है कि, 'मैं नहीं करता यह'?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह समझ में आने लगा है।

दादाश्री : तब दिन प्रति दिन अहंकार घटता जाता है और वैसे-वैसे बुद्धि भी घटती जाती है। सॉल्यूशन (हल) अपने आप ही आता रहता है। आपको कुछ नहीं करना है। मैंने जो पाँच वाक्य दिए हैं, उनसे सब सॉल्यूशन आ जाएगा।

(सूत्र-16)

अहंकार का रेफ (ज़रा सा भी) होगा, वह अंतराय डाले बगैर नहीं रहेगा, दखल करे बगैर नहीं रहेगा। अतः जहाँ दखल हो जाए, वहाँ पर खींच लेना चाहिए।

एक जज आए थे। मैंने कहा, 'क्या मैं-मैं करते रहते हो? ऐसा इगोइज़म (अहंकार) किस काम का? सब से बड़ी कमज़ोरी इगोइज़म है। आप चाहे कितने भी गुणवान हो, फिर भी आपमें नम्रता आनी चाहिए।' गुणवान कब कहा जाता है कि वह नम्रता से भरा हुआ होना चाहिए। इगोइज़म यानी छलक गया! छलक गया यानी यूज़लेस (बेकार) कहा जाएगा! अहंकार वही अधूरापन है!

मैं यहाँ पर बात करता हूँ और सामने वाला उग्र हो जाए, तो मैं तुरंत समझ जाता हूँ कि मेरा गलत है। बिल्कुल, हन्ड्रेड परसेन्ट (100 प्रतिशत) गलत है। इसलिए फिर मैं ऐसा नहीं कहता कि इसे समझ नहीं है इसलिए उग्र हो जाता है, मेरी ही भूल है।

प्रश्नकर्ता : आपका यह नम्रता का लेवल है, वह सभी के समझ में नहीं आता। आप एक सेकन्ड में पूरा पलट जाते हैं।

दादाश्री : आप तो कमज़ोर हो और आपमें और अधिक कमज़ोरी आ जाएगी। मुझे आपको स्कोप देना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : और वह स्कोप देने के लिए आप यह गलत है, ऐसा नहीं कहते।

दादाश्री : यह तो मेरी भूल हो गई, ऐसा कहता हूँ।

प्रश्नकर्ता : मेरा यह कहना है, कि आप इतना ज्ञान प्राप्त करने के बाद, सामने वाले व्यक्ति को समझ में न आए तो आप कहते हैं कि, मैं गलत हूँ।

दादाश्री : 'मैं गलत हूँ', कह देता हूँ। आपको दिखाई नहीं देता, तो मैं आपको कब तक बताऊँगा कि देखो, देखो, यह ऐसा है, ऐसा है। उससे आप अकुला जाएँगे। और यदि आपके हाथ में छुरी होगी तो मुझे मारोगे। मैं कहता हूँ कि, 'नहीं, आप सही हो, छुरी रख दो, भाई'। वर्ना छुरी मार देगा, उसे दिखाई नहीं देता इसलिए।

प्रश्नकर्ता : जैसे-जैसे महात्माओं में ज्ञान और समझ बढ़ती है, वैसे-वैसे पैरेलल (समांतर) अहंकार बढ़ता है। वास्तव में पैरेलल में नम्रता बढ़नी चाहिए न?

दादाश्री : वह जो अहंकार बढ़ता है उस

गोले को मैं चार-छः महीने बाद निकाल देता हूँ। वह पूरा ही निकल जाता है! मैं रोज़-रोज़ किच-किच नहीं करता। मैं जानता ज़रूर हूँ कि यहाँ इतना बढ़ गया है। इसलिए फिर एकाध बार निकाल देता हूँ। इन सभी को ऐसा कर-करके ही राह पर लाया है सब। दोष निकालना है और यदि मैं नहीं निकालूँगा तो उस तरफ वापस पेड़ निकल जाएगा। वणछो (पेड़ के नीचे के पौधे पर पड़ने वाली पैड़ की छाया) उत्पन्न हो जाएगी! इससे उसमें फल नहीं आएगा। आप वणछो समझते हो? वणछो के नीचे यदि कपास उगता है तो क्या होता है? अरे, इतने बड़े हो जाते हैं! फूल वगैरह कुछ भी नहीं आते। इसलिए लोग क्या कहते हैं कि वणछो लग गया। अरे भाई, इतना बड़ा कपास हो गया और कुछ आया क्यों नहीं? तो कहते हैं, वणछो लगा है! अरे, वणछो यानी क्या? ऐसा पेड़ (डाली फेलना) उग निकले उससे पहले मैं काट देता हूँ, फटाफट! आप मेरे इस तरीके से करना न! मेरा तरीका, आपका ही है।

प्रश्नकर्ता : आपके तरीके से चल रहा है। मुझे वह मेन्टल हॉस्पिटल जैसा करना पड़ेगा। यों दिशा निर्देश करके निकल जाना पड़ेगा, ऐसा करना पड़ेगा।

दादाश्री : नहीं, यहाँ भी यह आपका अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : मैं इसीलिए तो कहता हूँ न, 'ऐसे-ऐसे' करके निकल जाते हैं।

दादाश्री : वह तो आपकी रचना है। स्वीकार कर लो न भाई, जैसे मैं स्वीकार नहीं करता? असल नियम क्या है कि सामने वाला स्वीकार नहीं कर रहा हो, तो आप अपनी, 'मेरी भूल है', ऐसा कहोगे तो वहाँ काम चलेगा, वर्ना काम नहीं चलेगा।

प्रश्नकर्ता : वह तो, मैं कोई बात करूँहा और मैं मानूँगा कि मेरी बात सही है, और सामने वाला कहे कि, 'नहीं, गलत है', तो उससे तो दोनों के बीच टसल ही होगी न, इसीलिए किसी एक को तो छोड़ ही देना पड़ेगा न?

दादाश्री : मेरी बात से टसल ही कहाँ होती है किसी को? नहीं होती उसका क्या कारण है? मेरा स्वच्छ है! जहाँ अहंकार का रेफ नहीं है। और अहंकार का रेफ होगा तो वह अंतराय डाले बगैर नहीं रहेगा, दखल किए बगैर नहीं रहेगा। अतः जहाँ दखल हो जाए वहाँ पर खींच लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वह टेस्ट सही है हमारे लिए। हमारा सही होने के बावजूद भी हम तुरंत ही आपकी तरह वापस खींच सकें, इतनी नम्रता आ जाए तो हम अहंकार रहित हैं। सामने वाले को समझा न सकें, वहाँ हममें कोई कमी है।

दादाश्री : समझा नहीं सकते, उसी को अज्ञान कहते हैं।

अभी यदि हम कोई ऐसे देश में गए हों और वहाँ पर हम आशीर्वाद देकर कहें, 'स्वस्ति'! तो सामने वाला क्या समझेगा? 'क्या कुछ अपने को गाली दिया उसने?' वह उल्टा समझे तो मार बैठेगा। इसलिए हमें वह उग्र होता दिखाई दें, तब हम मन में ऐसा नहीं रखेंगे कि मैंने आशीर्वाद दिया है और यह किस आधार पर उग्र हो रहा है? ऐसा सब नहीं सोचेंगे। हम तुरंत ही कहेंगे कि भाई, आपके साथ मेरी भूल हो गई है, ऐसा लगता है!' ऐसा कहेंगे न, तब वह वापस पलटेगा। 'हमारी भूल हो गई', तो वह स्वीकार करेगा। फिर हम उसे कहें कि, 'तुम्हारे यहाँ क्या बोलते हैं?' फिर हम वैसा बोलेंगे न तो खुश हो जाएगा! उसकी भाषा में हल आना चाहिए। ये तो वापस अपनी खुद की भाषा में स्वीकार करवाने जाते

हैं। आपकी भाषा में मुझे बात करनी चाहिए। सामने वाले की भाषा में बात करनी चाहिए या अपनी भाषा में? आपको क्या लगता है? हर एक की भाषा अलग होती है न? हम ऐसे देश में गए हों तो अपनी भाषा में बात करेंगे तो क्या होगा उसे? उल्टा समझ में आएगा बेचारे को!

हम सभी कोने देखकर चलते हैं, तब जाकर हमारे पैर से कोई चीज़ नहीं टकराती।

(सूत्र-17)

'हम' तो मूलतः दखल रहित व्यक्ति हैं! हम दखल रहित हो गए तो फिर सब दखल वाले बैठे हों तब भी हमें क्या असर होगा? 'हमारी' उपस्थिति से ही सारा दखल चला जाता है। 'जिनका' 'आत्मा' में ही मुकाम है, 'उन्हें' क्या झंझट? मुकाम ही 'आत्मा' में है, 'उन्हें' व्यवहार बाधक नहीं है।

इस वर्ल्ड में एक ही व्यक्ति अबुध होता है, बाकी सब बुद्धिशाली। साधु-आचार्य सभी बुद्धिशाली! मुझ में बुद्धि नाममात्र भी नहीं है। इसलिए तो मुझे फायदा (मुक्त हो गया) हो गया!

प्रश्नकर्ता : बुद्धि रहित ज्ञानी का व्यवहार कैसे चलता है?

दादाश्री : वही देखना है। फॉरेन के साइन्टिस्ट इस बात को नहीं मान रहे थे। मैंने कहा, 'आप किस तरह मान सकते हैं यह? आपकी समझ में कैसे आएगा यह?' मैं कहता हूँ कि, 'मैं बुद्धि रहित हूँ।' तब लोग कहते हैं, 'नहीं, ऐसा नहीं बोल सकते। देखो-देखो, ऐसा बोल रहे हैं?' अरे, लेकिन बुद्धि नहीं है इसलिए कह रहा हूँ। तब उसके मन में ऐसा लगा है कि, 'सभी बुद्धिशाली हैं, तो सिर्फ दादा ही बुद्धि रहित हो सकते हैं क्या?' अरे, वे लोग बुद्धिशाली हैं, इसलिए तो बुद्धू होकर को बैठे हैं!

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह समझ में नहीं आया, यानी आप क्या कहना चाहते हैं?

दादाश्री : मैं 'मुझ में बुद्धि नहीं है', ऐसा कहता हूँ। तो मेरे पास अन्य कोई चीज़ होगी न? कोई प्रकाश तो होगा न मेरे पास? बुद्धि एक प्रकाश है और मेरे पास जो प्रकाश है, वह अलग तरह का प्रकाश है। हममें ज्ञान है, प्रकाश है।

कोई कहेगा कि, 'आप बुद्धि रहित हैं तो यह सब कैसे जानते हैं?' हम ज्ञान के प्रकाश से जानते हैं। आप बुद्धि के प्रकाश से जानते हो। दोनों का प्रकाश तो है ही, लेकिन प्रकाश में फर्क है। आपकी जो बुद्धि है वह इन्डायरेक्ट (परोक्ष) प्रकाश है, जबकि हमारा ज्ञान वह डायरेक्ट (प्रत्यक्ष) प्रकाश है।

प्रश्नकर्ता : जिसे डायरेक्ट प्रकाश कहा वही अबुधपना है?

दादाश्री : हाँ, वही अबुधपना है। डायरेक्ट प्रकाश! क्योंकि वह (बुद्धि) प्रकाश अहंकार के थ्रू (माध्यम द्वारा) आता है, इसलिए बुद्धि कहलाता है। और अहंकार खत्म हो गया यानी डायरेक्ट प्रकाश हो गया! कितने ही जन्मों से ढूँढ रहा था, वह प्रकाश मिल गया। प्रकाश मिला इसलिए आनंद मिला। वह आनंद फिर सीमा रहित आनंद है, असीम आनंद है, सनातन है। अहंकार और बुद्धि, दोनों मुझ में नहीं हैं।

संपूर्ण अबुध हो तभी ज्ञानी कहलाते हैं। वर्ल्ड में कोई भी चीज़ जानना जिनका बाकी नहीं है! और परमात्मा भी जिनके वश हो चुके हैं!

प्रश्नकर्ता : कोई चीज़ जानना बाकी नहीं है, वह क्या है?

दादाश्री : वह ज्ञान है, प्रकाश है और बुद्धि से तो बहुत दखल होता रहता है। (विपरीत)

बुद्धि द्वारा जानने से तो लड़ाई-झगड़े होते हैं, मतभेद होते हैं सभी। प्रकाश से मतभेद नहीं होता, दखल नहीं होता, कुछ भी नहीं होता। जितना-जितना रिलेटिव में आप आपत्ति उठाओगे, वह बुद्धिवाद है। हम में बुद्धिवाद नहीं है। हम रिलेटिव में (व्यवहार में) अबुध हैं और रियल में (निश्चय में) ज्ञानी!

ज्ञानी पुरुष कैसे होने चाहिए? बुद्धि रहित होने चाहिए। मुझ में बुद्धि नहीं है इसलिए मेरा सब सॉल्यूशन (समाधान) हो गया। बुद्धि होगी तब तक पूरी तरह से सॉल्यूशन नहीं हो सकता। अर्थात् जहाँ पर बुद्धि नहीं होगी वहाँ पर ज्ञान होगा और ज्ञान होगा वहाँ पर बुद्धि नहीं होगी, दो में से एक ही होगा।

(सूत्र-18)

जो अबुध हो जाए 'वे' ही 'सर्वज्ञ' हो सकते हैं! हम बुद्धि का उपयोग नहीं करते, हम 'अबुध' हैं। 'अबुध' हुए बगैर 'केवलज्ञान' प्रकट हो ही नहीं सकता।

प्रश्नकर्ता : 'हम में बुद्धि नहीं है, ज्ञान ही है', यह समझाइए?

दादाश्री : केवलज्ञान, वह मूल प्रकाश है। वह मूल प्रकाश बुद्धि से अलग है। जब तक बुद्धि है तब तक ज्ञान नहीं हो सकता। बुद्धि का और ज्ञान का बैर है, बुद्धि, ज्ञान नहीं होने देती। बुद्धि भटका देती है, संसार में भटकाती रहती है। बुद्धि तो फायदा और नुकसान, सिर्फ दो ही चीज़ें देखती हैं, और कुछ नहीं देखती, उसका व्यापार ही है फायदे-नुकसान का। कहाँ पर फायदा है और कहाँ नुकसान है और मोक्ष तो फायदे-नुकसान से बाहर है। अत: हम में बिल्कुल भी बुद्धि नहीं है। महावीर भगवान में बुद्धि नहीं थी। चौबीस तीर्थंकरों में बुद्धि नहीं थी।

बुद्धि का नाश होने के बाद में केवलज्ञान होता है। बुद्धि तो अंधेरा है। बुद्धि प्रकाश नहीं है, बुद्धि तो अंधे का प्रकाश है जबकि केवलज्ञान, देख सकने वाले का प्रकाश है।

प्रश्नकर्ता : अंधे का प्रकाश तो इस संसार में भटकने के लिए है।

दादाश्री : बुद्धि ही भटकाने वाली है। अनंत जन्मों से भटका ही रही है, कोई और यह नहीं करता। तीर्थंकरों को पहचानते हैं, तीर्थंकरों के पास बैठे रहे हैं, फिर भी वह भटकाती रहती है, मोक्ष में नहीं जाने देती। इतनी कला को अगर समझ जाए न, तो समझो सारी अक्ल आ गई!

अवस्था में बुद्धि का उपयोग नहीं किया जाए तो वह अबुधता है और अबुधता से सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है। हमें जैसे ही एक किनारे पर अबुध पद प्राप्त हुआ, तभी सामने वाले किनारे पर सर्वज्ञ पद आ गया। जो अबुध हो जाए 'वे' ही 'सर्वज्ञ' हो सकते हैं! हम बुद्धि का उपयोग नहीं करते, हम 'अबुध' हैं। 'अबुध' हुए बगैर 'केवलज्ञान' प्रकट हो ही नहीं सकता।

मैं चार डिग्री से फेल हुआ हूँ केवलज्ञान में। अत: मुझे आपके साथ बैठना पड़ता है। फेल नहीं हुआ होता तो मोक्ष में चला जाता, लेकिन फेल हुआ हूँ चौथे *आरे* (काल चक्र का बारहवाँ हिस्सा) में, अत: इस पाँचवे *आरे* में आना पड़ा है मुझे। चार ही डिग्री का फर्क है यह। इसीलिए मैं ऐसे करके *भजना* (उस रूप होना) करता हूँ दादा भगवान की, हमें चार डिग्री पूरी करनी हैं न!

अब अंदर जो दादा भगवान प्रकट हुए हैं, तो उनमें और मुझ में जुदाई क्यों है? तब कहते हैं, वह इसलिए कि कुछ काल तक जुदाई रहती है और कुछ काल तक एक भी हो जाते हैं। अब जुदाई इसलिए रहती है कि मुझ में और उनमें

डिफरेन्स (फर्क) है। वे 360 डिग्री पर हैं और मेरी 356 डिग्री हैं। मुझे उनसे चार डिग्री पर से विशेष प्रकाश मिलता है। अब इस दुनिया की किसी भी चीज़ के लिए मुझे उस प्रकाश की कमी नहीं है, सिर्फ केवलज्ञान के अंश में इसकी कमी है। केवलज्ञान समझ में आ गया है। केवलज्ञान है भी सही, लेकिन पचा नहीं है। अब वे चार डिग्री उसमें हेल्प करती है। इसलिए मैं दादा भगवान को क्या करता हूँ? ऐसे-ऐसे हाथ जोड़कर क्या बोलता हूँ? जब खुद इस तरह बोलते हैं, तब खुद के अंदर (ज्ञान रूपी) गुलाब, फूल खिलते जाते हैं। है क्या इसमें कुछ जोखिम वाला?

प्रश्नकर्ता : कुछ भी नहीं।

दादाश्री : दादा भगवान अंदर हैं 'ये' दादा भगवान नहीं हैं। ये तो अंबालाल पटेल हैं। हम ज्ञानी पुरुष हैं और फिर ज्ञानी भी कैसे? ऐसे जिनमें बुद्धि का एक छींटा भी नहीं है। जब बुद्धि का बिल्कुल भी उपयोग नहीं होगा, अहंकार निर्मूल हो जाएगा, तब पूर्ण 'केवलज्ञान' दिखाई देगा।

हम आपको जब ज्ञान देंगे न, तब आपको केवलज्ञान देंगे। परंतु वह पचता नहीं है। हमारा तीन सौ छप्पन पर आकर खड़ा रहा। तो आपका तीन सौ पच्चीस तक आकर खड़ा रह जाता है।

आप सब को आत्मा का ज्ञान देते हैं, आप सभी को आत्मानुभव है। हर एक को अपने-अपने परिमाण में। जैसे-जैसे आत्मा का कुछ अनुभव होता जाएगा न, वैसे-वैसे काम होता जाएगा। आत्मानुभव बढ़ने के बाद पच्चीस, तीस, चालीस प्रतिशत होने के बाद उसमें नाम मात्र को भी बुद्धि नहीं रहती। पच्चीस प्रतिशत (आत्मानुभव) होने से ही बुद्धि चली जाती है, अनुभव जब पच्चीस प्रतिशत तक पहुँचता है तब। क्योंकि उसके बाद उन्हें वह काम ही नहीं आती। बल्कि उनकी प्रगति में दखल करती रहती है।

(सूत्र-19)

भगवान क्या कहते हैं? यदि आप चंदूभाई हो तो हमारे बीच भेद है। यदि आप शुद्धात्मा हो, अभेद हो, तो हम दोनों एक ही हैं! जितनी लोगों के साथ अभेदता बरतेगी, उतना परमात्मापन प्रकट होगा! ऐसी अभेदता का क्या अर्थ है? कि आत्मा से ही सगाई, *पुद्गल* की सगाई नहीं, आत्मा की सगाई वह अभेदता है।

यह बात आपको कुछ फिट हुई? इसमें से कोई फिट हुई हो तो आगे दूसरी नयी बात करूँ। कुछ फिट नहीं हो तो फिर से पूछना। हमें उसके फिट होने से मतलब है और मैं और आप एक ही हैं।

कोई चीज़ पसंद नहीं आए तो मुझे वापस लेने की और आपको पसंद आए ऐसी बात करने की ज़रूरत है। आपको उसमें कोई हर्ज नहीं रखना है। आपको कुछ शर्म आती है, मुझे कुछ भी शर्म नहीं आती। अर्थात् हम सब एक ही हैं। हम सभी एक ही (आत्म)धर्म के हैं, एक ही देश के हैं। मुझ में और आप में जुदाई नहीं है। मुझसे डरने का कोई कारण नहीं है। तू मुझे डाँटेगा तो चलेगा लेकिन मैं तुझे नहीं डाँटूगा, यह बात पक्की मानना।

मैं और आप अलग हैं, ऐसा मानना ही मत। मैं आपके भीतर बैठा हूँ। सभी के भीतर मैं बैठा हूँ, गधे में मैं बैठा हूँ, कुत्ते में मैं बैठा हूँ, बंदर में बैठा हूँ, सभी में, आपमें भी बैठा हूँ। मेरी आपसे जुदाई नहीं है। आप हमसे जुदाई मत रखना। और आप मुझसे जुदाई रखोगे तो आपकी भूल है।

ज्ञानी पुरुष को किसी से जुदाई नहीं होती, ज्ञानी को भेदबुद्धि नहीं होती, वे व्यवहार को सबोटेज़ नहीं करते। व्यवहार को अखंड रखते

हैं। ज्ञानी आत्मस्वरूप होते हैं, वे सभी को एक ही स्वरूप से देखते हैं। यानी हम सभी एक ही हैं। आपको शायद जुदाई लगे, पर हमें जुदाई नहीं लगती। हमें जुदाई नहीं लगती है, उसका क्या कारण होगा?

मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए। मुझमें बुद्धि ही नहीं है इसलिए मुझे अभेद लगता है, सबकुछ खुद का ही लगता है। जब तक बुद्धि हो तभी तक भेद रहता है। बाकी जहाँ बुद्धि नहीं है, वहाँ भेद कैसा? बुद्धि तो भेद डालती है, जुदाई दिखलाती है कि 'यह मेरा और यह तेरा।' जहाँ पर बुद्धि है ही नहीं, वहाँ 'मेरा-तेरा' रहा ही कहाँ? यह तो भेदबुद्धि उत्पन्न हुई है - 'मैं अलग और यह अलग।'

भेद खत्म किए बगैर तो चारा ही नहीं है न! अभेद होना पड़ेगा न! *पोतापणुं* गया, इसका अर्थ ही यह है कि भेद खत्म हो गए। अब, जब तक बुद्धि रहती है तब तक *पोतापणुं* नहीं छोड़ता न! और जब तक बुद्धि है तब तक बुद्धि भेद डालती है न! यह *पोतापणुं* चला जाएगा तो अभेद हो सकेंगे।

आपको मैं अलग लगता हूँ लेकिन मुझे आप अलग नहीं लगते हैं, क्योंकि मैं सभी को आत्मस्वरूप ही देखता हूँ और मेरे अपने रूप में (स्व-रूप में) ही देखता हूँ। मुझे आप उलटा-सीधा बोलो तो भी अलग नहीं लगता। क्योंकि मैं वन फैमिली (एक परिवार) के रूप में देखता हूँ। और आप अपनी फैमिली को ही फैमिली नहीं मानते। एक सिर्फ हमारी वाइफ हीराबा को छोड़कर बैठा, तो यह पूरी दुनिया मेरी फैमिली हो गई। वर्ना सिर्फ उन्हें फैमिली बनाकर बैठा होता, तो क्या होता? यह तो सारी दुनिया मेरी फैमिली हो गई है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, अब आपसे मिलने के बाद अन्य सभी के साथ भी बहुत अभेदता है, ऐसा अनुभव होता है।

दादाश्री : नहीं है वह, उससे लेना-देना नहीं है। आत्मा से ही अभेदता और दूसरों के प्रति प्रेम! यों एक ही कुटुंब जैसा लगता है। ऐसी अभेदता का क्या अर्थ है, कि आत्मा से सगाई, आत्मा की सगाई। *पुद्गल* की सगाई नहीं है। आत्मा की सगाई, वही अभेदता है। अपनी अभेदता किस वज़ह से है? तब कहते हैं, आत्मा की सगाई को लेकर है।

प्रश्नकर्ता : इसीलिए कहा है न, कि ज्ञानी पुरुष तो किसी भी जीव को उनके आत्मा के रूप में ही देखते हैं!

दादाश्री : हाँ, वे आत्मा रूपी और वे खुद के रूप में ही देखते हैं। उन्हें जुदाई नहीं लगती। जुदाई रखें तो वे ज्ञानी नहीं हैं। अभी कोई गाली दे रहा हो तो उसके साथ जुदाई नहीं रखेंगे। वह तो उसकी नासमझी को लेकर गाली देता है बेचारा! लेकिन समझदार व्यक्ति तो ऐसा नहीं करेगा न! जिम्मेदार व्यक्ति सबके सामने ऐसा उदाहरण पेश नहीं करेगा न!

'विपरीत बुद्धिनी शंका, ते सुणता गैबी जादुथी,
छतां अमने नथी दंड्या, न करीया भेद 'हुं' 'तुं' थी।'

हम पर शंका की तरह-तरह की तब भी हम 'तू ऐसा है, तू ऐसा है' ऐसा नहीं बोले। 'मैं' और 'तू' के भेद नहीं डाले। अपने यहाँ 'मैं'-'तू' का विचार ही नहीं होता है न, इसलिए वे लिखते हैं। उन्हें अनुभव में आया तभी लिखते हैं न!

सबके साथ मुझे बैठाकर कोई मुझे गालियाँ दे, तब मैं कौन से उपयोग में रहता हूँ? मैं ही बोलता हूँ और मैं ही सुनता हूँ, ऐसे उपयोग में मैं रहता हूँ, ऑन द मॉमेन्ट। यानी शुद्धात्मा से बाहर नहीं जाता। एक तो उसके साथ भेदभाव

नहीं है, उपरांत उसके साथ अभेदभाव है, फिर कोई दखलंदाज़ी ही नहीं न! भेद हो तो झंझट उत्पन्न होगी। मारने वाले और मार खाने वाले में भेद ही नहीं है। इसलिए दखलंदाज़ी ही नहीं।

'आत्मदर्शन' होने के बाद भेदबुद्धि नहीं रहती। फिर अभेदता रहती है और 'बुद्धि की वजह से' व्यवहार हर एक के साथ अलग-अलग रहता है। व्यवहार में जो भेद दिखाई देता है, वह तो विवेक है। आत्मा प्राप्त करने के बाद ही परम विनय उत्पन्न होता है, उसके बाद जुदाई नहीं लगती, अभेद दृष्टि होती है।

(सूत्र-20)

लघुतम भाव में रहना और अभेद दृष्टि रखना, ये इस 'अक्रम विज्ञान' का 'फाउन्डेशन' (नींव) है!

'हम' इस जगत् में दो भावों से रहते हैं : लघुतम भाव और अभेद भाव, ये हमारी बाउन्ड्री (सीमा) हैं। 'रिलेटिव' में लघुतम भाव से हैं, 'रियल' में 'हम' गुरुतम भाव से हैं और 'स्वभाव' से अभेद भाव में हैं!

लघुतम वह तो अपना केन्द्र ही है। इस केन्द्र में बैठे-बैठे गुरुतम प्राप्त होगा। अपनी तो नई 'थ्योरीज़' हैं सारी, बिल्कुल नई! पूर्ण होने के लिए 'लघुतम भाव' जैसा अन्य कोई भाव है ही नहीं। लेकिन जगत् लघुतम भाव कैसे प्राप्त कर सकता है? सब से मुश्किल कोई भाव है तो वह लघुतम भाव है!

प्रश्नकर्ता : इस लघुतम का अर्थ कैसे निकाला? अपना जो अहंकार है, वह अहंकार ज़ीरो डिग्री पर आ जाए तो वह लघुतम है?

दादाश्री : नहीं। अहंकार तो वैसे का वैसा ही रहता है लेकिन अहंकार की मान्यता ऐसी हो जाए कि, मैं सब से छोटा हूँ और वह भी एक प्रकार का अहंकार ही है। ऐसा है, इस लघु का अर्थ 'छोटा हूँ' हुआ। फिर लघुतर अर्थात् छोटे से भी छोटा हूँ और लघुतम अर्थात् सभी मुझसे बड़े हैं, ऐसा अहंकार। यानी वह भी एक प्रकार का अहंकार है!

अब, जो गुरुतम अहंकार है, यानी कि बड़ा होने की भावना, मैं इन सभी से बड़ा हूँ, ऐसी जो मान्यता है, उससे यह संसार खड़ा हो गया है। जबकि लघुतम अहंकार से मोक्ष की तरफ जा सकते हैं। लघुतम अहंकार अर्थात् 'मैं तो इन सब से छोटा हूँ' ऐसा करके सारा व्यवहार चलाना। उससे मोक्ष की तरफ चला जाता है। 'मैं बड़ा हूँ' ऐसा मानता है, इसलिए यह संसार 'रेसकोर्स' (स्पर्धा) में उतरता है और वे सभी भान भूलकर उल्टे रास्ते पर जा रहे हैं। यदि लघुतम का अहंकार हो न, तो वह लघु होते-होते जब एकदम लघुतम हो जाता है। तब वह परमात्मा हो जाता है!

हम व्यवहार में लघुतम भाव से रहते हैं। ये मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार जो सब हैं, वह अंत:करण है और क्रोध-मान-माया-लोभ वह सारा व्यवहार है। व्यवहार से हम लघुतम हैं। निश्चय से हम क्या हैं? गुरुतम भाव में हैं। और यों स्वभाव से अभेद स्वरूप हैं। आपसे हम ज़रा भी जुदा नहीं हुए हैं या इनसे भी जुदा नहीं हुए है या किसी से भी जुदा नहीं हुए हैं! बड़े आचार्यों से भी जुदा नहीं या यहाँ से कोई गधा जा रहा हो तो उससे भी जुदा नहीं हैं! अर्थात् मुझे पूरे जगत् में कोई अलग लगता ही नहीं। ऐसा नहीं है कि जितने यहाँ पर आए हैं उतने ही मेरे हैं। ये सभी मेरे हैं और मैं सभी का हूँ!

जितनी अभेदता रहती है, उतनी ही खुद के आत्मा की पुष्टि होती है। हाँ, ये सब अलग है, ऐसा मानते हैं इसलिए तो खुद के आत्मा की

सारी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई है न! अभेदता, वही शक्ति। मुझ से जितनी अभेदता रखोंगे उतनी शक्ति प्राप्त होगी।

अभेदभाव उत्पन्न हुआ न, एक मिनट भी मुझे सौंपा न, कि मैं ऐसा हूँ साहब, वह अभेदभाव हो गया। उतनी उसकी शक्ति बढ़ गई।

लघुतम भाव में रहना और अभेद दृष्टि रखनी, ये इस अक्रम विज्ञान का 'फाउन्डेशन' है। 'इस' विज्ञान का 'फाउन्डेशन' क्या है? लघुतम भाव में रहना और अभेद दृष्टि रखना। जीवमात्र के प्रति, पूरे ब्रह्मांड के जीवों के प्रति अभेद दृष्टि रखनी, यही इस विज्ञान का 'फाउन्डेशन' है। यह विज्ञान कोई यों ही बगैर 'फाउन्डेशन' का नहीं है।

(सूत्र-21)

सभी को अभेदभाव से देखना, अभेदभाव से वर्तन करना, अभेदभाव से चलना, अभेदभाव ही मानना। 'ये अलग हैं' ऐसी-वैसी मान्यताएँ सब निकाल देना, उसका नाम ही प्रेमस्वरूप।

अब, जितना भेद जाएगा, उतना शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है। शुद्ध प्रेम को उत्पन्न होने के लिए आप में से क्या जाना चाहिए? कोई वस्तु निकल जाए तब वह वस्तु आएगी। यानी कि यह वेक्युम रह नहीं सकता। इसलिए इसमें से जितना भेद जाए उतना शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है। संपूर्ण भेद जाए तब संपूर्ण शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है, यही रीति है।

आपको समझ में आया 'पोइन्ट ऑफ व्यू' (दृष्टिकोण) ? यह अलग तरह का है और प्रेममूर्ति बन जाना है। सब एक ही लगे, जुदाई लगे ही नहीं। ये तो कहेंगे, 'यह हमारा और यह आपका।' पर यहाँ से जाते समय 'हमारा-आपका' होता है? इसलिए इस रोग के कारण जुदाई लगती है। यह रोग निकल गया, तो प्रेममूर्ति हो जाता है।

प्रेम यानी यह सारा ही 'मैं' ही हूँ, 'मैं' ही दिखता हूँ। नहीं तो 'तू' कहना पड़ेगा। 'मैं' नहीं दिखेगा तो 'तू' दिखेगा। दोनों में से एक तो दिखेगा ही न! व्यवहार में बोलना ऐसे कि 'मैं, तू।' पर दिखना चाहिए तो 'मैं' ही न! वह प्रेमस्वरूप यानी क्या? कि सभी को अभेदभाव से देखना, अभेदभाव से वर्तन करना, अभेदभाव से चलना, अभेदभाव ही मानना। 'ये अलग हैं' ऐसी-वैसी मान्यताएँ सब निकाल देना, उसका नाम ही प्रेमस्वरूप। एक ही परिवार हो ऐसा लगे।

असल में, जगत् जैसा है वैसा वह जाने, फिर अनुभव करे, तो वह प्रेमस्वरूप ही हो सकता है। जगत् 'जैसा है वैसा' क्या है? कि कोई जीव किंचित्मात्र दोषित नहीं, निर्दोष ही है जीवमात्र। कोई दोषित असल में है ही नहीं और दोषित दिखता है इसलिए प्रेम आता ही नहीं। इसलिए जब निर्दोष दिखेगा, तब प्रेम उत्पन्न होगा। हमें कोई दोषित नहीं दिखाई देता। दोषित तो विभक्त अवस्था को लेकर है, विभाजित अवस्था को लेकर, भेद स्वरूप को लेकर है। भेदबुद्धि से दोषित दिखाई देते हैं। जिसकी भेदबुद्धि चली गई, उसमें अभेद दृष्टि उत्पन्न हो गई। वहाँ पर दोषित जैसा कुछ है ही नहीं है, प्रेम ही है।

अत: यह प्रेम वह परमात्मा गुण है, इस प्रेम से आपको यहाँ पर खुद के सभी दु:ख विस्मृत हो जाते हैं। अर्थात् प्रेम से बंध गया यानी फिर दूसरा कुछ बंधने का रहा नहीं।

दु:ख असर न हो, तब जानना कि अब प्रकृति सहज हो गई और दिन प्रति दिन अभेदता बढ़ती जाएगी। इस रूम में जो सभी बैठे हैं, उन सभी से अभेदता बरतेगी, फिर ऐसा करते-करते पूरे गाँव के साथ अभेदता बरतेगी, फिर पूरे हिंदुस्तान के साथ अभेदता बरतेगी, बाद में पूरी दुनिया के साथ अभेदता बरतेगी।

जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सानिध्य में आगामी सत्संग कार्यक्रम

अडालज

21 से 28 दिसम्बर सुबह 10 से 12-30, शाम 4-30 से 7 - **आप्तवाणी 14 भाग-4 पर सत्संग पारायण**
नोट : गुजराती किताब के पेज नंबर 114 से वाचन होगा। (हिन्दी-अंग्रेजी में ट्रान्सलेशन उपलब्ध रहेगा।)
29 दिसम्बर (रवि) सुबह 10 से 12-30 - **श्री सीमंधर स्वामी की छोटी प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा**
2 जनवरी (गुरु) रात्र 8-30 से 10 - **परम पूज्य दादाश्री की पुण्यतिथि पर कार्यक्रम**
(अक्रम टूर - दादाजी स्मृति के साथ कार्यक्रम)
1 फरवरी (शनि) शाम 5 से 7 - **सत्संग**
2 फरवरी (रवि) शाम 4 से 7-30 - **ज्ञानविधि**

राजकोट

10-11 जनवरी (शुक्र-शनि) शाम 7 से 10 - **सत्संग**
12 जनवरी (रवि) शाम 5 से 8-30 - **ज्ञानविधि**
स्थल : पारिजात पार्टी प्लोट, शीतल पार्क चोक, 150 फूट रींग रोड, राजकोट. **संपर्क :** 9909977440

पटना

7-8 फरवरी (शुक्र-शनि) शाम 5 से 8 - **सत्संग**
9 फरवरी (रवि) शाम 3-30 से 7 - **ज्ञानविधि**
स्थल : श्री कृष्ण मेमोरियल हॉल, कारगिल चौक, गांधी मैदान रोड, पटना. **संपर्क :** 7352723132

पुणे में निष्पक्षपाती त्रिमंदिर का भव्य प्राणप्रतिष्ठा महोत्सव

12 फरवरी (बुध) शाम 5 से 7 - **सत्संग**
13 फरवरी (गुरु) सुबह 10 से 12-30 - **सत्संग** और शाम 4-30 से 7 - **सत्संग**
14 फरवरी (शुक्र) सुबह 9-30 से 12-40 - **श्री शिव मंदिर में स्थापित सभी भगवंतो की प्राणप्रतिष्ठा**
शाम 4-30 से 7 - **सत्संग**
15 फरवरी (शनि) सुबह 9-30 से 12-30 - **श्री कृष्ण मंदिर में स्थापित सभी भगवंतो की प्राणप्रतिष्ठा**
शाम 3-30 से 7 - **ज्ञानविधि**
16 फरवरी (रवि) सुबह 9 से 12-15 - **श्री सीमंधर स्वामी मंदिर में स्थापित सभी भगवंतो की प्राणप्रतिष्ठा**
स्थल : त्रिमंदिर, पुणे-बेंगलुरु हाईवे रोड, खेड़ शिवापुर के पास, वरवे बीके, पुणे, महाराष्ट्र.
संपर्क : 7218473468, 9425643302
सूचना : पांच दिवसीय प्राणप्रतिष्ठा महोत्सव में (टेंट में) रहने की और भोजन की सुविधा निःशुल्क रहेगी। रजिस्ट्रेशन करवाना आवश्यक है। रजिस्ट्रेशन की अधिक जानकारी Akonnect ऐप के द्वारा दी जाएगी।

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687, **भावनगर :** 9313882288, **अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** 9574001445, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820
यु.एस.ए.-केनेडा: +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

परम पूज्य दादा भगवान का 117वाँ जन्मजयंती महोत्सव : वडोदरा : ता. 10 से 17 नवम्बर 2024

भक्ति

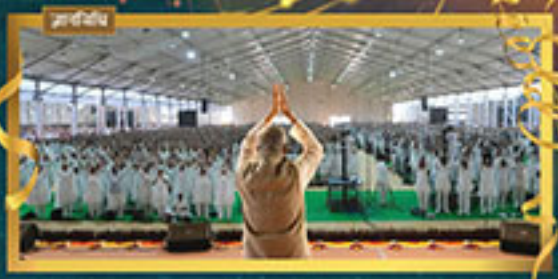

आशीर्वाद

जन्मजयंती का दिन

दृष्टि दर्शन

थीम पार्क - चिल्ड्रन पार्क

गुजरात के गृहमंत्री श्री हर्ष संघवी पूज्यश्री के दर्शन के लिए

जन्मजयंती महोत्सव का एरियल व्यू

दिसम्बर 2024
वर्ष-20 अंक-2
अखंड क्रमांक - 230

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Licensed to Post Without Pre-payment
No. PMG/NG/036/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो दखल होता ही नहीं

आपका डिस्चार्ज मोह अपने आप ही विलय हो जाएगा, यदि उसमें दखलंदाज़ी नहीं करोगे तो। दखल मत करो, क्या हो रहा है, वह 'देखते' रहो। चारित्र मोह में भी दखल होता है! दखल के बिना तो मोह हो ही नहीं सकता। मोह अर्थात् दखल। दखल करे बगैर रहता नहीं है, ज्ञाता-द्रष्टा को दखल नहीं होता। चारित्र मोह में दखल रहता है, 'मैं अभी नहीं आऊँगा' ऐसा करने से फिर दखल रह जाता है। क्योंकि माल ही ऐसा भरा हुआ है, दखल वाला। उससे दखल वाला चारित्र मोह निकलता है। ज्ञाता-द्रष्टा के पास अन्य कोई विशेषण ही नहीं होता। जिससे दखल-वखल हो जाता है, वह 'आप' नहीं हो, पर यह चारित्र मोह का दखल है।

-दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner.
Printed at Amba Multiprint, Opp. H B Kapadiya New High School, Chhatral - Pratappura Road,
At - Chhatral, Tal : Kalol, Dist. Gandhinagar – 382729.